

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के वर्तमान राष्ट्रपति
फ्रैंकलिन डेलनो रुज़वेल्ट

अमरीका

अमरीका की खोज

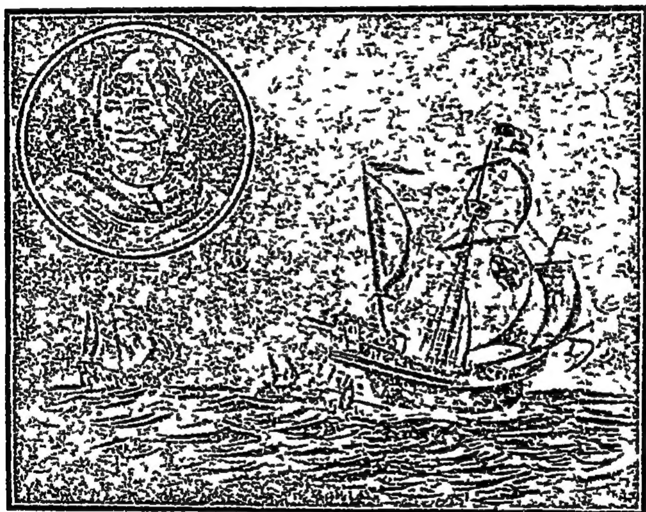
"अरे भाइयो, दौड़ो, देख जाओ, देवगण हमें देखने को आये हैं; आओ-आओ।"

एक दिन प्रातःकाल देखते ही देखते समुद्र के किनारे दल के दल अमरीका के आदिम अधिवासी इकट्ठे हुए। यूरोप के गोरे लोगों को पहले-पहल देखकर आश्चर्य से उन्होंने उपरोक्त बातें कही थीं। कोलम्बस तथा उनके साथियों को देखकर उन्होंने मन मे सोचा था कि उनकी दशा देखने के लिये देवगण स्वर्ग से पृथ्वी पर आये हैं।

उस समय अमरीका के लोग बहुत ही असभ्य और आदमखोर थे। यूरोप के गोरों को देखकर वे बड़े ही आश्चर्य-चकित हुए और ऊपर कहे शब्दों में पुकार मचाकर उन्होंने देश के स्त्री-पुरुषों को समुद्र के तीर पर बटोरा। उन गोरों की सारी ही चीजें प्राचीन लोगों को नयी और आश्चर्यजनक मालूम होती थीं। बन्दूक को देखकर उहोंने समझा कि यह वज्र है। बन्दूक छोड़ते समय जो आग की लपट-सी उठती है, उसे उन्होंने

बिजली और उसकी आवाज को बिजली की कड़क समझा था। ये बातें आज से चार सौ साल पहले की हैं।

कोलम्बस ने आज से चार सौ साल पहले अमरीका का आविष्कार किया था। अमरीका की आविष्कार-कहानी से भारत के इतिहास का थोड़ा बहुत सम्बन्ध है। पुराने समय मे



कोलम्बस और उनका जहाज

यूरोप के लोग भारत की अगाध धन-सम्पत्ति की बातें सुना करते थे। और, यह बात भी उनसे छिपी नही थी कि पूरब तथा पश्चिम एशिया की कोई-कोई जाति भारत में व्यापार करके धनी हो चुकी है। ईसामसीह के जन्म के वर्षों पहले, यूरोप में भारत की उपजी हुई चीजों का सादर व्यवहार होता

था। इसलिये, यूरोप के लोग भारत से व्यापार करने के लिये व्याकुल से हो उठे थे। मगर, उन्हें यह नहीं मालूम था कि समुद्र की राह से किस प्रकार भारत जाया जाता है। चूँकि स्थलमार्ग से जाने में अनेकों बड़े-बड़े पहाड़ और मरुभूमि पार होना पड़ता, इसलिये वे समुद्र होकर भारत पहुँचने की राह ढूँढ़ने लगे। सन् १४९२ में स्पेन के राजा की सहायता से कोलम्बस भारत जाने की राह ढूँढ़ने को निकले और भारत के बदले अटलांटिक महासागर पार होकर वे अमरीका जा पहुँचे।

कोलम्बस का जन्म इटली के अन्तर्गत जेनेवा नामक नगर मे हुआ था। जब वे तरुण थे, तो पुर्तगाल के लोग अफ्रिका के दक्षिणी प्रान्तों का चक्कर काटते हुए भारतवर्ष पहुँचने की जी-तोड़ कोशिशें कर रहे थे। वहाँ का वास्कोडिगामा नामक एक नाविक भारत का पता लगाने को निकला था। ग्यारह महीने समुद्र-यात्रा करने के बाद सन् १४९८ के २० वीं मई को वह कालीकट नगर पहुँचा था। यूरोप के लोगों में वास्कोडिगामा ही समुद्र की राह से भारत आनेवाला प्रथम व्यक्ति था।

पृथ्वी के आकार के बारे में कोलम्बस की धारणा थी कि यह नारंगी की तरह गोल है। इसलिये, यदि लगातार पश्चिम ही की तरफ जाया जाय, तो अटलांटिक महासागर पार होकर अफ्रिका महादेश का चक्कर लगाये बिना भी भारतवर्ष पहुँचा जा सकता है। कोलम्बस ने मन ही मन इस संकल्प को दृढ़ किया और जरूरत के सामान तथा जहाज आदि के

लिये यूरोप के बहुतेरे राजाओं से, जो उस समय थे, सहायता माँगी। मगर, परिणाम वही निकला, जो किसी भी नये विषय की बात छेड़ने से हुआ करता है। उनकी विनती पर किसी भी देश के राजा ने कान न दिया। उनके प्रस्ताव को सुनकर किसीने कहा—अरे, यह पागल है। किसीने कहा—इस तरह का काम धर्म से बाहर है। इसलिये कि उस समय लोगों का विश्वास था कि अटलांटिक महासागर का ओर-छोर ही नहीं है!



वास्कोडिगामा।

संसार मे जो व्यक्ति कोई नया काम कर जाते हैं, वे कभी निराश नहीं हुआ करते। कोलम्बस को भी राजे-रजवाड़ों से बार-बार निराशा-जनक उत्तर मिला किया, फिर भी वे उत्साह को खो नहीं बैठे। वर्ण आने और जाने लगे। पास मे कौड़ी नहीं, बेचारे कमी के कठोर पीड़न से पीड़ित हो उठे थे। मगर, अपनी धुन के पक्के तथा असाधारण उद्योगी कोलम्बस ने अपने संकल्प को न त्यागा। उद्यम की कभी भी हार नहीं होती। अन्त मे कोलम्बस की लालसा पूरी होने का सुअवसर आ पहुँचा। उसी समय स्पेन स्वाधीन हुआ। जब तुम स्पेन का

इतिहास पढ़ोगे, तो तुम्हें मालूम होगा कि स्पेन बहुत दिनों तक मुसलमानों के अधिकार में रहा था।

बाद में स्पेनवालों ने अपने देश से मुसलमानों को निकाल बाहर किया और धीरे-धीरे सभी विषयों में देश की उन्नति करने में जुट गये। वहाँ की रानी ईसावेला शिल्प तथा विज्ञान से रुचि रखती थीं और आविष्कार करनेवालों को बहुत ही प्रोत्साहन देती थीं। कोलम्बस की विनती सुनकर वे चुप न रह गयीं। सन् १४९२ ई० में उन्होंने अपनी रकम से तीन जहाज बनवाये और उन्हें जरूरत के सामानों से भरकर कोलम्बस के सुपुर्द किया। उन तीन जहाजों को लेकर कोलम्बस निकल पड़े। डेढ़ मास तक समुद्र में घूमते रहने के बाद सबसे पहले गुएन-हाबा नामक द्वीप में पहुँचे। इस बात को कोलम्बस सोच भी नहीं सके थे कि राह में जमीन भी मिलेगी और मिलेगी भी तो ऐसी जमीन, जो सुमेरु से कुमेरु तक फैलकर हमारी राह रोकेगी। उनकी एक मात्र इच्छा भारतवर्ष को ढूँढ़ निकालने की रही थी। इसलिये, अमरीका के पूर्वीय किनारे पर जो टापू मिले थे, उन्होंने समझा था कि यह भारत से ही लगा हुआ कोई स्थान है। इसी कारण आज भी वे द्वीप 'पश्चिम भारत के द्वीप-समूह' कहलाते हैं।

यह बात तुम्हें पहले ही बता चुके हैं कि कोलम्बस के आविष्कार के दो वर्ष बाद अफ्रिका के दक्षिणी प्रान्तों को

घूमकर भारत आने की सामुद्रिक राह का पता वास्कोडिगामा ने लगाया था।

उस समय यूरोप भर के लोगों मे आविष्कार का एक हौसला-सा समा गया था कि कौन किस देश का पता लगाये, कौन किस देश को कब्जे मे लाकर वहीं अपनी प्रधानता बढ़ाये। कोलम्बस के आविष्कार की खबर यूरोप मे पहुँचते ही चारों ओर चुहल-सी मच गयी। वहाँ की प्रधान-प्रधान जातियों के लोग उन्मत्त अटलांटिक की छाती पर अपनी नौकाओं से पश्चिम की ओर रवाने हुए। पुर्तगाल के लोगों ने ब्रेजिल का पता लगाया और उसपर अपना अधिकार जमा लिया। अंग्रेज लोग लेब्रेडर उपद्वीप मे उतरे तथा दक्षिण की ओर उन्होंने अपना राज्य-विस्तार किया। फ्रांसीसियो ने कनाडा और मिसिसिपी नदी के दक्षिणी उपकूल के कुछ हिस्से को कब्जे मे कर लिया और स्पेनवालों ने केटीसागरी का द्वीप-समूह, मेक्सिको और पेरू राज्य पर दखल जमाया। इस भाँति अमरीका के भिन्न-भिन्न देश यूरोपवालों के कब्जे मे आ गये।

अब 'अमरीका' नाम की जन्म-कहानी सुनो। देशों का आविष्कार हो जानेपर इटली के एक शिक्षित सज्जन ने, जिनका नाम अमेरिगो डेस्पची था, उनके परिचय की एक किताब लिखी। इसीलिये, उनके नाम पर नये महाद्वीप का नाम अमरीका पड़ा। तकदीर की खूबी देखो, जिन कोलम्बस ने अनेक

कठिनाइयाँ झेलकर अमरीका का आविष्कार किया, उस नये महादेश के किसी भी देश से उनका नाम नहीं जोड़ा गया! इस तरह की घटना पृथ्वी के इतिहास में दुर्लभ नहीं। किन्हीं-किन्हीं इतिहासकार की राय है कि कोलम्बस के पहले सन् १००० में लिफ् (Leif) नामक किसी नॉर्थमैन ने अमरीका का आविष्कार किया था। मगर, यह बात पाँच सौ वर्षों तक अंधकार में थी।

अब तुम्हें अमरीका के उस समय का इतिहास बतायेंगे, जब गोरी-जाति ने वहाँ अपने उपनिवेश नहीं कायम किये थे। वहाँ के भी प्राचीन अधिवासी वैसे ही असभ्य और जंगली थे, जैसे असभ्य और जंगली पृथ्वी के अन्य देशों के अधिवासी थे। वे देह में रंग लगाते; सिर में पक्षियों के पर खोंसते और रोएँ के जूते पहनते थे। घने जंगलों और पहाड़ों की गुफाओं में उनका निवास था। जंगली जानवर और पक्षी के शिकार से वे भूख बुझाते थे। जब यूरोप के लोग वहाँ दाखिल हुए, तो उनसे लड़ाई शुरू हो गयी। यूरोपवालों की मंशा उन्हें खेदकर वहाँ बसने की थी। धीरे-धीरे वे वहाँ के आदिम अधिवासियों को निकाल-बाहर करने लगे, उन्हें मौत के घाट उतारने लगे या दूर के पहाड़ी प्रान्तों में खेद देने लगे। यदि उन लोगों को कभी मौका हाथ आ जाता, तो चुपचाप छापा मारकर परिवार समेत गोरों की हत्या करके बदला चुका लेते। ऐसा सब दिनों से होता आ रहा है कि जब मज-

बूत और कमजोर की ठन जाती है, तो मजबूत ही जीतते हैं। यहाँ भी वही नियम चरितार्थ हुआ। धीरे-धीरे प्राचीन अधिवासियों की तादाद घटने लगी।



आदिम अधिवासियों से गोरों की लड़ाई

जिस समय एलिजाबेथ इंगलैंड की रानी थी, उसी समय से चारों तरफ से अंग्रेजो के सुख और सौभाग्य की बढ़ती होने लगी थी। क्या वाणिज्य-व्यापार, क्या ललित-कला और क्या ज्ञान-विज्ञान, सभी बातों मे अंग्रेजों की खासी उन्नति हुई थी। रानी एलिजाबेथ के समय मे मुगल-सम्राट् अकबर भारत के सम्राट् थे। उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नाम से व्यवसायियों की एक समिति कायम हुई थी। उस समिति ने भारत मे व्यापार करने का अधिकार पा लिया था और भारत

से नाता जोड़ना शुरू कर दिया था। ठीक उसी समय रानी एलिजाबेथ के एक प्रियपात्र ने, जिनका नाम सर वाल्टर रेले था, अमरीका के पूर्वीय उपकूल में वर्जिनिया नामक एक गाँव बसाया। बस, उसी दिन से युनाइटेड स्टेट्स (संयुक्त राज्य) की नींव पड़ी।

रानी एलिजाबेथ ही के समय में सर वाल्टर रेले ने अमरीका के पूर्वीय उपकूल में वर्जिनिया गाँव बसाकर युक्त-राज्य-समूह की बुनियाद डाली थी। रानी एलिजाबेथ आजीवन क्वाँरी रही थीं। इसी कारण रानी को खुश करने के लिये रेले ने उस नये गाँव का नाम वर्जिनिया यानी कुमारी रक्खा। अंग्रेजी के 'वर्जिन' शब्द के मानी कुमारी है। उस समय तक प्राचीन महाद्वीप में आलू और तम्बाखू नहीं मिलता था। सर रेले ने ही पहले-पहल अमरीका से लाकर इन दो वस्तुओं का दर्शन सभ्य लोगों को कराया।

अब यहाँ पर इंगलैंड के विषय मे भी कुछ बातें बतानी जरूरी हैं। रानी एलिजाबेथ का देहांत हो जाने पर प्रथम जेम्स इंगलैंड के राजा बने। उस समय वहाँ ईसाई धर्म की प्रार्थना-रीति के लिये आपस में मतभेद होना शुरू हो गया था। राजा जेम्स केथलिक मतानुयायी थे, इसलिये प्रजाओं को अपना ही मत मान लेने के लिये वे उनपर अत्याचार भी करने लगे थे। राजा के बल प्रयोग के कारण देश में हलचल-सी पड़ गयी। जिन्होंने राजा के मत को मान लिया, वे लोग

तो देश मे ही रहे और जिन्हें वह कबूल न था, उनमे से कुछ लोगों ने तो बगावत और अशांति भी फैलायी। और, कुछ लोगों ने विचारा कि देश मे रहते हुए अपनी इच्छानुसार



धार्मिक मतभेद के कारण अमेरिका में आ बसनेवाले लोग। इन्हें 'पिलग्रिम फादर्स' कहते हैं।

धर्म-मत मानना नही चल सकता ; इसलिये देश छोड़कर वे अमरीका चले आये। यों तो सन् १६०७ से ही अमरीका अथवा नयी दुनिया मे अँग्रेजों ने उपनिवेश कायम करना शुरू किया था, फिर सन् १६२० मे 'मेफ्लावार' नामक जहाज से एक दल के लोग वहाँ जा दाखिल हुए। वहाँ की जलवायु इंगलैंड जैसी ही थी। वहाँ उन लोगों ने खेती-बारी करके अपना गुजारा करना शुरू कर दिया। लगे हाथ औपनिवेशिक

गोरों ने वहाँ 'न्यू इंगलैंड' नाम का एक नगर भी बसाया। उन गोरों की लगन, उद्यम और कोशिशों से वन-जंगलों से भरी हुई पहाड़ी भूमि आदमियों से भरे हुए सुंदर-सुंदर नगरों और गाँवों में बदल गयी। वे औपनिवेशिक लोग धीरे-धीरे तेरह भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बस गये और उन्हें ही उन्होंने अपनी मातृभूमि मान लिया। अमरीका ही उन लोगों का स्वदेश बन गया। पहले उन प्रांतों के शासन के लिये एक-एक शासक इंगलैंड से अमरीका आया करते थे। वे औपनिवेशिकों से मिलकर उन प्रदेशों पर हुकूमत करते थे। धीरे-धीरे ऐसा भी समय आया कि इंगलैंड के किसी भी तरह का बंधन उन औपनिवेशिकों को सुहाने नहीं लगा। एक दिन वे इंगलैंड की अधीनता को कबूल करते हुए उन्नति की जिस सीढ़ी पर चढ़ रहे थे, अब उसे ही दूर करने पर तुल गये। ये कहानियाँ अगले अध्यायों में कहेंगे।

जॉर्ज वाशिंगटन

'हमारे बगीचे के चेरी के पौधे को किसने काटा ? शायद एक हजार रूपये खो जाने से भी मुझे इतना दुख न होता !'

ऑगस्टिन ने एक दिन अपने हाथ से लगाये हुए बगीचे में जाकर देखा, उनके प्यारे चेरी को किसीने कुल्हाड़ी से काट दिया है, जिसे बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ झेलकर उन्होंने इंगलैंड से लाया था। यह देखकर उन्हें आंतरिक दुख हुआ। घर आकर उन्होंने उपरोक्त बातें कहीं। इतने मे उनका पुत्र जॉर्ज हाथ में कुल्हाड़ी लिये वहाँ हाजिर हुआ। पिता ने पूछा—जॉर्ज, क्या तुम बता सकते हो कि मेरे चेरी के पौधे को किसने काटा ?

जॉर्ज ने उत्तर दिया—"पिताजी, मैंने ही आपके चेरी को काट दिया है।" पिता अचरज भरे नेत्रों से पुत्र की ओर ताकते रह गये।

मगर, सच्ची बात क्या थी, सुनो। जॉर्ज के जन्मोत्सव पर पिता ऑगस्टिन ने उन्हें एक सुन्दर, छोटी-सी पैनी कुल्हाड़ी दी थी। कुल्हाड़ी पाकर जॉर्ज का कलेजा आनंद से बाँसों उछल पड़ा। वह उसे लेकर बगीचे को गया। बगीचे मे उसके पिता ने चेरी का एक पौधा लगाया था। उस चेरी की कलम को उ होंने बड़ी हिफाजत से इङ्गलैंड से लाया था और बगीचे

में रोपा था। बालक ने बगीचे में उसी पेड़ से अपनी कुल्हाड़ी की धार अजमायी । जॉर्ज की सचाई पर पिता अचरज में आ गये और आनंदित हो उठे। जॉर्ज को अपनी गोदी में उठाकर उन्होंने कहा—"बेटा, हजारों चेरी गांछ के पाने से जो खुशी हासिल होती, उससे कहीं अधिक सुख तुम्हारे इस व्यवहार से मिला। लड़के जब दोष करते हैं, तो झूठी बातों से उसे छिपाने की कोशिश करते हैं। मगर, तुमने उस तरह की कमजोरी नहीं दिखायी और सच्चा-सच्चा कह दिया। मैं तुम पर बहुत ही संतुष्ट हूँ। आशीर्वाद करता हूँ, तुम सत्यवादी होओ।" आगे चलकर उसी सत्यवादी बालक की अनोखी वीरता से अमरीका स्वाधीन हुआ । बालक का नाम जॉर्ज वाशिंगटन था । कुछ इतिहास की बातें बताकर फिर वाशिंगटन की जीवन-कहानी कहेंगे। अब यह सुनो कि एक जाति और एक ही देश के लोगों मे अनबन क्यों हुई।

यह तो हम कह ही चुके हैं कि अमरीका-आविष्कार के बाद वहाँ अँग्रेजों ने अपना उपनिवेश कायम किया । राजा प्रथम जेम्स के समय से अठारहवीं सदी के मध्य तक इंगलैंड से हजारों-हजार आदमी अमरीका जाकर वहाँ घर-द्वार बना कर बसते रहे। लगभग तेरह देश जोड़कर वे लोग रह रहे थे। इन्हीं तेरह देशों के उपनिवेश का नाम यूनाइटेड-स्टेट्स अथवा संयुक्त राज्य है।

अंग्रेज और फ्रांसीसियों मे शुरू से ही अनबन होती आ

रही थी। जिस प्रकार अमरीका के अंग्रेजों ने जगह-जगह अपना अधिकार बढ़ाया था, उसी प्रकार कुछ जगहों पर फ्रांसीसियों का भी दखल था। कनाडा देश फ्रांसीसियों का था। अँग्रेज बराबर ही उनके हाथों से कनाडा छीन लेने की कोशिशें किया करते थे। अन्त मे सन् १७५६ मे कुछ सेना लेकर जेम्स उल्फ नामक एक युवक वहाँ गये। वहाँ जाने से उनका मतलब फ्रांसीसियों से कनाडा छीन लेना था। उल्फ ने बड़ी वीरता-से फ्रांसीसियों को लड़ाई मे हरा दिया और कनाडा पर अधिकार जमा लिया। यों तो लड़ाई मे उल्फ जीत जरूर गये, परंतु वे इतना सख्त घायल हुए थे कि जैसे ही उन्हें जीत की खबर मिली कि विजय के गौरव से वे सदा के लिये सो गये! कनाडा अँग्रेज़ों के कब्जे मे आ गया।

इधर फ्रांसीसी लोग इस हार का बदला चुकाने के लिये तरह-तरह के छल-कपट कर रहे थे। वे वर्जिनिया के पश्चिम ओहियो नदी के किनारे की जमीन के लिये झगड़ा करने पर आमादा हो गये। फ्रांसीसियों ने कहा—"इस देश का आविष्कार सबसे पहले हमलोगों ने किया है, इसलिये यह हमारा है।" अंग्रेज बोले—"मगर, उसे तो हमने पुराने बाशिन्दों से खरीदा है, इसलिये हमारा है।" और, आदिम अधिवासियों ने कहा—"अजी जनाब, तुम दोनों में से किसी की दलील ठीक नहीं। हम इसके पुराने अधिवासी है। तुम अंग्रेज और फ्रांसीसी—दोनों के दोनों ही नये हो;

इसलिये यह तुममें से किसीका नहीं, वरन् हमारा है।" ऐसी दशा में नतीजा क्या होता है, आसानी से समझ सकते हो। वही 'जिसकी लाठी, तिसकी भैंस।' तीनों दलों में अब युद्ध रुके तो कैसे?

ठीक ऐसे ही मौके पर अंग्रेजों पर और एक मुसीबत आन पड़ी थी। उस समय अंग्रेजों की एक सेना औपनिवेशिकों की रक्षा के लिये वहाँ रहती थी। इसका कारण यह था कि यद्यपि अंग्रेजों ने कनाडा को जीत लिया था और कुछ अन्य देशों को भी हथिया लिया था, फिर भी फ्रांसीसियों को वे सन्देह की नजरों से देखते थे। क्या मालूम वे कब कौन-सी आफत ढा दें। अब तक भी फ्रांसीसियों ने वहाँ से अपनी फौज हटायी नहीं थी। इसीलिये कि भविष्य में किसी तरह की गड़बड़ी न हो, अंग्रेज भी वहाँ अपनी सेना रक्खे हुए थे। परंतु, सिर्फ रखने से ही तो काम नहीं चलने का, उसके लिये काफी खर्च की जरूरत थी। लेकिन, उसके खर्च का बोझा अपने ऊपर ले कौन? पार्लियामेंट के किन्हीं-किन्हीं सदस्य ने कहा, जब यह सेना अंग्रेजी औपनिवेशिकों की रक्षा के लिये रक्खी गयी है, तो यह भार उन्हें ही उठाना पड़ेगा और इसके लिये उनपर टैक्स लगाया जायगा। पार्लियामेंट के ऐसा प्रस्ताव करने पर औपनिवेशिकों ने उत्तर दिया—पार्लिया-मेंट में हमारी ओर के एक भी सदस्य नहीं हैं। इसलिये, हमें इसपर विचार करने का अधिकार नहीं है कि टैक्स बैठाना

उचित है या अनुचित। फलतः, हम पर टैक्स नहीं लगाया जा सकता। पार्लियामेंट के बहुत-से सदस्यों ने इस प्रस्ताव को युक्तियुक्त समझा। उन्होंने भी कहा—"टैक्स लगाना उचित नहीं होगा।" परन्तु, राजा और उनके कुछ मंत्रियों ने टैक्स लगाना ही स्थिर किया। चाय पर भी कर लगा। इस से तो औपनिवेशिक लोग बहुत ही खफा हो गये।

सन् १७७३ के दिसम्बर में चाय से लदे हुए कुछ जहाज बोस्टन बंदरगाह मे भिड़े। इतने मे कुछ औपनिवेशिक अमरीका की पुरानी जाति रेडइंडियन का भेष बनाकर ज़हाज पर गये और चाय के जितने भी बक्स जहाज पर लदे थे, सबको समुद्र मे फेंक दिया।

इस घटना के कुछ ही दिन बाद औपनिवेशिकों से इंगलेंड की गहरी ठन गयी। कुछ दिनो की लड़ाई के बाद अंग्रेज बुरी तरह हार गये और औपनिवेशिकों की सब प्रकार से जीत हुई। सन् १७७६ मे औपनिवेशिक अंग्रेजों ने अपने को सब भाँति स्वतंत्र और स्वाधीन घोषित कर दिया। लड़ाई में उसी सत्यवादी वाशिंगटन ने फौज का खूब वीरता और कुशलता से परिचालन किया था। युद्ध मे फ्रांसीसियों ने भी तरह-तरह से औपनिवेशिकों की सहायता की थी। सन् १७८३ मे मजबूरन लड़ाई बंद करके अंग्रेजों को औपनिवेशिकों की स्वाधीनता कबूल करनी पड़ी थी। अमरीका के स्वाधीनता-भाल की यही छोटी-सी कहानी है।

जॉर्ज वाशिंगटन

वाशिंगटन के पूर्व-पुरुष इंगलैंड के उत्तरी भाग में रहते थे। वह वंश राजभक्त था, इसी कारण जब राजा चार्ल्स क्रॉमवेल से हार गये और उन्हें बड़ी ही कठोर सजा मिली, तो जॉन तथा लॉरेंस वाशिंगटन नामक दो भाई राजा की तरफ आये। अतएव, वे क्रॉमवेल की कोप-दृष्टि के शिकार हुए। इसलिये, उन्होंने सोचा कि यों तो देश में रहने पर पग-पग पर विपद् का शिकार होना पड़ेगा और ताज्जुब क्या यदि जीवन पर ही आफत आये। सन् १६५७ में इसीलिये इंगलैंड छोड़कर वर्जिनिया में बसने की इच्छा से वे अमरीका आये। यह तुम्हें मालूम है कि उस समय गरीब अंग्रेजों के अनेक परिवार बहुत-से कारणों से विवश होकर बसने के लिये अमरीका जाते थे।

परंतु, वाशिंगटन-परिवार साधारण श्रेणी के अंग्रेज-परिवार जैसा न था। इंगलैंड में इस परिवार की मर्यादा थी, मान-सम्भ्रम, नाम-गाम और समाज में खूब आदर भी था। क्रॉमवेल तथा राजा चार्ल्स में जो लड़ाई छिड़ी, उसी राष्ट्र-विप्लव के समय मजबूरन उस परिवार ने देश को छोड़ा था। इसलिये कि उस समय भाई ने भाई के विरुद्ध हथियार उठाया था, पिता अपने पुत्र के हृदय-रक्त से तलवार भिगोने को तैयार हो गये थे। इंगलैंड के इतिहास में वैसा गृह-युद्ध और कभी नहीं हुआ।

जॉर्ज और लॉरेंस दोनों भाई अमरीका मे पटोसफ नदी के किनारे कई हजार बीघे जमीन खरीदकर रहने लगे। धीरे-धीरे उनका परिवार बहुत ही बढ़ा। वाशिंगटन के पिता



जॉर्ज वाशिंगटन

ऑगस्टिन, जॉन वाशिंगटन के पोते थे। अपनी पहली स्त्री के मर जाने से ऑगस्टिन ने अपना दूसरा व्याह किया था। पहली स्त्री से उनके तीन पुत्र और एक लड़की थी, जिनमे पुत्र लॉरेंस ने बाद मे काफी नाम कमाया था। दूसरी स्त्री से ऑगस्टिन के पाँच लड़के हुए थे। जॉर्ज वाशिंगटन सबसे बड़े थे। उनका जन्म सन् १७३२ की बाईसवीं फरवरी को हुआ था।

जिन दिनों जॉर्ज का जन्म हुआ था, उन दिनों ऑगस्टिन ने रापाह नदी के किनारे कुछ जमीन खरीदी थी और वही रह-रहे थे। चूँकि उन दिनों गोरों का उपनिवेश कायम होना शुरू ही हुआ था, इसलिये जमीन की दर बड़ी सस्ती थी। दूसरी बात यह थी कि उन स्थानों मे लोगों का निवास भी न था,

अतः अधिकतर स्थान जंगलों से ही भरे थे। प्राचीन जातियों से लड़ाई-झगड़ा भी रोज़मर्रे की बात थी। इन कारणों से बहुत थोड़ी कीमत पर अधिक से अधिक जमीन मिल जाती थी। यही कारण था कि उन लोगों का जीवन, जिन्होंने वहाँ पहले-पहल उपनिवेश कायम किया था, एक ओर से तो विपदों से घिरा था। दूसरी ओर जंगली लोग उन उपजाऊ भूमिखंडों में काफी फसल उपजाते थे, इसलिये भोजन-वस्त्र की कोई शिकायत नहीं थी। वे औपनिवेशिक लोग अतिथियों का बड़ा ही आदर-सत्कार करते थे। जो कोई भी अतिथि आते, वे उनकी सादर सेवा में लग जाते। उनके यहाँ से कोई भी अतिथि कभी निराश नहीं लौटे। हाँ, अगर किसी प्रकार की आफत थी, तो वहाँ के आदिम अधिवासियों से। क्योंकि चारों ओर पहाड़ की ऊँची चोटियाँ खड़ी थीं, स्थान जंगलों से ढँका-सा था, बीच-बीच में औपनिवेशिकों की बनायी हुई खेती के योग्य भूमि थी। मान लो, आधी रात को औपनिवेशिक परिवार के सब लोग गहरी नींद सो रहे हों और ऐसे ही समय आदिम अधिवासी लोग एकाएक उनपर टूट पड़ते हैं और सारे परिवार का खातमा कर नौ दो हो जाते हैं, तो? उन दिनों औपनिवेशिकों को ऐसी ही भयभीत दशा में जीवन बिताना पड़ता था।

लड़कों का चरित्र बनता है अपने पिता-माता के चरित्र के प्रभाव से। यदि माँ-बाप विद्वान, बुद्धिमान, चरित्रवान,

निस्वार्थ और ईश्वर पर विश्वास करनेवाले होते हैं, तो उनकी संतान का चरित्र भी उन्हीं आदर्शों से बनता है। जॉर्ज के माता-पिता कर्तव्यपरायण, चरित्रवान और धार्मिक थे। उनकी दूरदर्शिता तथा ईश्वर पर विश्वास तो सबसे असाधारण था। अब हम तुम्हारे सामने कुछ दृष्टांत रखते हैं कि उन्होंने किस प्रकार से जॉर्ज के चरित्र को बनाया।

शरद् काल था। एक दिन जॉर्ज को साथ लेकर उनके पिता ऑगस्टिन पास ही के एक बगीचे मे टहलने को गये। आनंद के मारे जॉर्ज का हृदय खिल पड़ा। बगीचे में शरीफे के अनगिनत पेड़ लगे थे और प्रत्येक पेड़ में असंख्यों शरीफे झूल रहे थे। गाछों के नीचे भी शरीफों का ढेर-सा लगा था। अपनी छोटी-सी उम्र में जॉर्ज ने न तो कभी शरीफे के उतने पेड़ ही देखे थे और न गिरे हुए उतने शरीफे ही। खुशी में भरकर वे बीन-बीन कर शरीफा खाने लगे। इतने में पिता ऑगस्टिन ने कहा—जॉर्ज, बीते वर्ष हमारे किसी अपने-सगे ने खाने को तुम्हें एक बड़ा-सा शरीफा दिया था। और, उसे चट कर जाने को तुम इतने उतावले हो गये थे कि हमारे कहने पर ही भय से अनिच्छापूर्वक तुमने उसका थोड़ा-सा अपने भाई-बहनों को दिया था। मैंने उस समय तुमसे कहा था—"अगर तुम मेरी बात मानो, तो अगले वर्ष इनाम मे ईश्वर तुम्हें बहुत-से शरीफे देंगे। देखो, पेड़ों मे कितने शरीफे लगे हैं और नीचे कितने गिरे हुए हैं। तुममें ऐसी शक्ति नहीं कि

जीवन भर खाकर भी तुम इन्हें खत्म कर सको।"

पिता की बातें सुनकर बालक जॉर्ज शर्म-से गड़ गये। उन्होंने कहा—"पिता जी, जीवन में अब कभी भी मैं वैसा स्वार्थी न होऊँगा।"

इस प्रकार की चतुराई से पिता ने पुत्र को एक अन्यन्त ही अच्छी सीख सिखायी कि स्वार्थपरायणता बड़ी भारी नीचता है।

पृथ्वी पर जितनी भी चीजें नजर आती हैं, सब ईश्वर की सृष्टि हैं। उनकी दया के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। अब यही किस्सा सुनो कि ऑगस्टिन ने जॉर्ज को इस बात की शिक्षा भी कैसे कौशल से दी थी!

वसंत काल में एक दिन ऑगस्टिन ने बगीचे के एक कोने की मिट्टी को जोत दिया। एक छड़ी से उन्होंने जोती हुई भूमि पर जॉर्ज वाशिंगटन का नाम लिखा और उसी करीने से अक्षरों पर गोभी के बिये बो दिये। उसके बाद मिट्टी से फिर बियों को ढाँक दिया। समयानुसार बीज से अंकुर उगे। जब जॉर्ज एक दिन वहाँ गये, तो उन्होंने देखा, किसी ने पीले-पीले अक्षरों में जॉर्ज वाशिंगटन, इन दो शब्दों को लिख दिया है। उनके अचरज का ठिकाना न रहा। दौड़े-दौड़े पिता के पास गये और बोले—"बाबूजी, देख जाओ, कैसी आश्चर्य-जनक घटना है!" पिता आश्चर्यजनक घटना को भाँप गये। फिर पुत्र के साथ वे फुलवारी पहुँचे। जॉर्ज ने कहा—"बाबूजी,

तुमने कभी ऐसी आश्चर्यजनक घटना देखी है क्या ? अच्छा, इसे किसने लिखा बाबूजी ?"

"अरे, लिखेगा कौन, ये पौधे ही इस ढंग से उगे है।"

"नहीं बाबूजी, किसीने जरूर ही इन्हें इस ढंग से सजाया है।"

"आखिर तुम समझते क्या हो कि ये आप ही आप इस प्रकार नही जन्मे ?"

"नः, ऐसा तो कभी हो ही नही सकता, देखो तो भला एक-एक अक्षर कैसे सजे-सँवारे हैं। जहाँ, जिसके बाद जिस अक्षर को रहना चाहिये, वह ठीक वहीं पर है। यहाँ तक कि मात्रा मे भी भूल नही। आप ही आप ऐसा हो, यह भी क्या मुमकिन है ? क्यों बाबूजी, क्या तुमने ही इसे लिखा है ?"

"बेटा, तुम्हारा अनुमान ठीक है। तुम्हे एक उपदेश देने के लिये मैंने ऐसा किया है। देखो, तुम्हारे नाम के ये दो-चार अक्षर भी जब आप ही आप सजे-सँवारे नहीं हो सकते, तो इस दुनियाँ की लाखों-लाख चीजें—आकाश में चाँद, सूरज, तारे, पृथ्वी पर हवा, पानी, नद-नदी, पशु-पक्षी, जलचर-जंतु आदि—नियत स्थान पर कैसे शोभित हुईं ? हमे देखने को आँखें, सुनने को कान, साँस लेने को नाक, खाने को मुँह, चबाने को दाँत, काम करने को हाथ, चलने-फिरने को पाँव, सोचने को मन, लाड़-प्यार को माता-पिता और दुलार करने को भाई-बहन किसने दिये ? दिन मे प्रकाश पाकर हम निहाल

हो जाते हैं और रात में अंधकार पाकर आराम करते हैं। पानी से प्यास बुझती है, आग से हम गर्मी पाते हैं। आखिर इन सब वस्तुओं को किसने बनाया ? तुम्हारी क्या धारणा है कि ये चीजें आप ही तुम्हारी इच्छा और कमियों को पूरी करती है ?" जॉर्ज को इससे अधिक समझाने-बुझाने की जरूरत नहीं रह गयी। उन्होंने उसी दम उत्तर दिया—"नहीं-नहीं, ये आप ही आप कदापि नहीं हुए। इन सब वस्तुओं के बनानेवाले ईश्वर ही हैं। हम जिन वस्तुओं को काम में लाते हैं, सब उस दयामय के दान हैं।"

वाशिंगटन का चरित्र इन्हीं तरीकों से गठित हुआ था। जिस समय उनका जन्म हुआ था, उस समय अमरीका में ऊँची शिक्षा का कोई भी उपाय नहीं था। ऊँची शिक्षा देने के लिये लड़कों को इंगलैंड भेजना पड़ता था। जॉर्ज के सौतेले भाई लॉरेंस ने इंगलैंड में ऊँची शिक्षा पायी थी। ऑगस्टिन को इस पर संदेह था कि जॉर्ज की पढ़ाई का इतना अधिक खर्च चलाना सम्भव हो या नहीं। यही सोचकर जॉर्ज को उन्होंने एक स्थानीय पाठशाला में भर्ती कर दिया था। स्कूल में भर्ती होने के समय जॉर्ज की उम्र सिर्फ ६ साल की थी। पाठशाला के गुरुजी का ज्ञान तो वैसा नहीं था, परंतु चरित्र-गठन पर उनका विशेष ध्यान था, जो बाल्यजीवन के लिये अनिवार्य है। गुरुजी की नौकरी पहले सेनाविभाग में थी। एक बार गोले की चोट से उनका एक पैर ही उड़ गया। इसीलिये, जब

बेचारे काम करने से लाचार हो गये, तो एक पाठशाला खोल कर बैठे।

जॉर्ज अपने गुरुजी की बड़ी ही श्रद्धा और भक्ति करते थे। गुरुजी का जैसा ध्यान बालकों के चरित्र-गठन पर था, वैसा-ही ध्यान इस बात का भी था कि लड़कों के हाथ की लिखावट सुन्दर हो। जॉर्ज ने खूब ही सुन्दर अक्षर लिखना सीखा, उनके अक्षर मोतियों-जैसे सुन्दर होने लगे। पढ़ने पर भी उनका ध्यान और तल्लीनता खूब थी। जॉर्ज के गुरुजी का नाम हॉबी था। वे जॉर्ज को बहुत ही प्यार करते थे और जॉर्ज भी उनकी श्रद्धा-भक्ति करते थे। साँझ को घर पर पिताजी ग्रीस, रूस, इंगलैंड, स्विटजरलैंड आदि देशों की ऐतिहासिक कहानियाँ जबानी सुनाया करते थे। पिता से उन वीरतापूर्ण कथाओं को सुनकर आनन्द से जॉर्ज का दिल बाँसों उछल पड़ता था। बालपन की कल्पनामय आँखों में मैदानेजंग की आजूबी तस्वीर-सी उतर आती थी।

सत्यवादिता, क्रीड़ा-कौतुक आदि सभी बातों से जॉर्ज को बड़ा प्रेम था। कसरत करने से उनका शरीर गठीला और सबल था। जब जॉर्ज केवल आठ साल के बालक थे, उसी समय कारिब सागर के द्वीपों के लिये अंग्रेजों और स्पेनवालों मे टंटा खड़ा हुआ। औपनिवेशिक अंग्रेजों ने उस समय अंग्रेजों की मदद के लिये कुछ सेना इकट्ठी की थी। मगर, उस सेना मे जो लोग बहाल हुए थे, उनमे से बहुतेरे ऐसे थे, जिन्हें भली-भाँति

यह भी नहीं मालूम था कि युद्ध क्या बला है। इसी कारण उन रँगरूटों को युद्ध की तालीम देने के लिये विद्यालय खोले गये थे। हरेक गाँवों में सैनिकों को शिक्षा दी जाती थी। उन सैनिकों की साज-पोशाक, अस्त्र-शस्त्र और युद्ध-विद्या की कवायद इत्यादि देखकर जॉर्ज चकित और मुग्ध हो गये थे। उन्हें भी सैनिक बनने की प्रबल इच्छा हो उठी थी। उनके सौतेले भाई लॉरेंस, जो विलायत से शिक्षा पाकर लौटे थे, जिनके विषय में हम पहले कह भी चुके हैं, युद्ध के समय सैनिक-विभाग में ऊँचा पद पाकर लड़ाई पर चले गये। मगर, जॉर्ज ने क्या किया? जॉर्ज ने अपने सहपाठियों के दो दल बनाये—एक दल स्पेनवालों का और एक दल अँग्रेजों का, इसी प्रकार उन दो दलों मे स्कूल के सामनेवाले खुले मैदान में लड़ाई-दंगे हुआ करते।

जब लॉरेंस लड़ाई पर से लौटे, तो उनकी जबानी लड़ाई की कौतूहल बढ़ानेवाली कहानियाँ सुनकर युद्ध-विद्या की ओर जॉर्ज का झुकाव बहुत बढ़ गया। उन्हें पाँच ही वर्षों तक स्कूली शिक्षा मिल पायी थी कि जॉर्ज के पिता का देहांत हो गया। मगर, मरने के पहले ही पिता ने अपनी सारी सम्पत्ति पुत्रों में बाँट दी थी। उस बँटवारे के अनुसार रुपाहा नदी के तीर का भाग जॉर्ज के हिस्से पड़ा। जॉर्ज और उनके भाई तब तक बालिग नहीं हुए थे, इस कारण सारी जायदाद की देख-भाल उनकी माता ही करती थीं। लॉरेंस केटोमक नदी

के किनारे रहने लगे और अपने प्रभु के नाम उस सम्पत्ति का नाम 'भर्ननशैल' रक्खा।

जॉर्ज की अवस्था उस समय ग्यारह वर्ष की थी। अब वे जॉर्ज विलियम नामक एक बुद्धिमान शिक्षक की देख-रेख में शिक्षा पाने लगे थे। उनके पास जॉर्ज ने गणित, जरीब तथा नकशा आदि बनाना सीखा। भावी जीवन के लिये जो जरूरी है, उन विषयों की शिक्षा जॉर्ज ने ग्रहण की और उसी समय से इस बात पर उनका ध्यान रहने लगा कि किस राह से चलने पर समाज मे आदरणीय बन सकते हैं। चरित्र-गठन पर तो उनका हद से ज्यादा ध्यान था। सोलह की उम्र मे जॉर्ज ने उस स्कूल से भी नाता तोड़ लिया। क्योंकि वहाँ की सीखने योग्य बातें जॉर्ज ने अपना ली थीं। और, वह विद्यालय भी हॉबी साहब की पाठशाला से कुछ ही अच्छा था—बस।

विलियम साहब का विद्यालय छोड़ देने पर जॉर्ज ने भर्ननशैल मे लॉरेंस के पास जरीब और गणित की ऊँची तालीम पायी। वहाँ रहते हुए ही उन्हें सेना मे भर्ती होने की प्रबल इच्छा हो उठी थी। लॉरेंस के दोस्त-मोहिम (उनमे से अधिक लोग युद्ध के कार्यों मे लगे थे) समय-समय पर लॉरेंस के यहाँ आकर अतिथि होते थे। उस समय वे युद्ध-सम्बन्धी तरह-तरह की बाते करते थे। इन्ही विषयों की बातें होतीं कि बीते दिन उन्होंने किस प्रकार लड़ाई में साहसिकता से

जीवन बिताया। जॉर्ज उन कहानियों को सुनते हुए सुध-बुध खो देते थे। उनके भी हृदय में ऐसी व्याकुल इच्छा होती कि लड़ाई के मैदान में कूद पड़ें। एकदिन उन्होंने लॉरेंस से कहा—"भैया, मैं भी सैनिकों ही का पेशा करूँगा।" उन्हें उत्साह देते हुए लॉरेंस ने कहा—"यह तो बड़ी अच्छी बात है भाई।" और, लॉरेंस के प्रयत्न और चेष्टाओं से उन्हें इंगलैंड के राजा के नौ-विभाग मे एक जगह मिली।

जॉर्ज की माता मेरी ने उनके उस विभाग में भर्ती होने से पहले आपत्ति की थी। उनके आपत्ति करने का कारण यह था कि सैनिक-विभाग के काम में विरले ही आदमी अपने चरित्र को बचा सकते हैं। भाँति-भाँति के कुसंसर्गों में पड़कर लोग चरित्र से हाथ धो बैठते हैं। परंतु, जब दोनों भाई की एकान्त इच्छा देखी, तो फिर कुछ न बोलीं। लेकिन, जाने के समय सभी सामान खरीदकर जॉर्ज जब माता से विदाई लेने गये, तो स्नेहमयी माता अपना कलेजा न थाम सकी। कातरकंठ से बोली—"बेटा, अगर तू मुझे जिन्दा देखना चाहता है, तो अभी इस नौकरी पर लात मार दे।" स्नेहमयी माता को रोते देख जॉर्ज का हृदय पिघल गया। उन्होंने भी रोते हुए कहा—"माँ, मैं ऐसे काम हर्गिज नहीं करूँगा, जिससे तुम्हें चोट पहुँचे।" और उसी दम उन्होंने उस काम को छोड़ दिया।

कुछ ही दिनों के बाद फिर लड़ाई के नशे में पागल होने

का समय आ गया। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि अंग्रेजों और फ्रांसीसियों मे नाम को भी मेल नही था। अमरीकन उपनिवेशों के अधिकार के लिये दोनों मे ठन गयी। अंग्रेज शासकों ने औपनिवेशिकों से सेना की सहायता माँगी। अपने देश की रक्षा के लिये, ताकि फ्रांसीसियों को दब जाना पड़े, औपनिवेशिकों ने तमाम घूम-घूमकर सैन्य-संग्रह करना शुरू कर दिया। वाशिंगटन भी इस अवसर पर फौज मे दाखिल हो गये। माता मेरी ने इसबार एक शब्द भी न कहा। वे वोली—"वेटा! इस बार तुम देश के लिये सैनिक-पेशा अपना रहे हो, अब मैं कुछ न बोलूँगी। जाओ, ईश्वर की इच्छा पूरी हो।"

उसके बाद जब वाशिंगटन ने अंग्रेजों की अधीनता से उपनिवेशों को मुक्त कर दिया, जब अमरीका के घर-घर मे उनकी कीर्ति फैल गयी, पृथ्वी के कोने-कोने उनका गुण-कीर्त्तन होने लगा, उस समय भी यदि माता मेरी के सामने कोई जॉर्ज की प्रशंसा के पुल बाँधते, तो वे कहतीं—"ईश्वर की ही मंगल-कामना पूरी हुई। मै ने तो केवल कोशिशें ही की थी कि जॉर्ज आदमी बने, चरित्रवान बने। ईश्वर ने हमारी शिक्षा को पूरा किया है, इसके लिये मैं उन्हें हृदय से अनेक धन्यवाद देती हूँ। जॉर्ज ने तो सिर्फ अपने कर्तव्य का पालन किया है। कर्तव्य ही धर्म है। अपने कर्त्तव्य का उसने पालन किया है, इसलिये मैं उसे आशीर्वाद देती हूँ।"

जब माता मेरी की उम्र तिरासी साल की थी, तो जॉर्ज-जनसाधारण द्वारा उन राज्यों के सभापति बनाये गये थे। उस समय माता अस्वस्थ थीं। जॉर्ज बड़े ही मातृभक्त थे। अस्वस्थ माता को छोड़कर उन्होंने सभापति पद को स्वीकार करने से भी इनकार कर दिया था। उस समय माता मेरी ने पुत्र से कहा था—"बेटा, अब तुम देश के काम के लिये हो, देश तुम्हें चाहता है, ऐसी दशा में अपनी सेवा और सुविधा के लिये मैं तुम्हें घर में नहीं फँसा सकती। मेरे दिन खत्म हो चुके हैं, शायद मैं अब बचूँगी भी नहीं। हो सकता है, लौटकर तुम मुझे देख भी न पाओगे। इतने पर भी देश की भलाई की गर्ज से संतुष्ट होकर तुम्हें यह जिम्मेवारी का पद ग्रहण करने का अनुरोध करती हूँ। मैं खुशी-खुशी तुम्हें देश के लिये अपनी आत्मशक्ति को लगाने का आदेश देती हूँ। आशीर्वाद देती हूँ, तुम सब प्रकार से जयी होओ।"

वाशिंगटन को विदाकर चुकने पर माता मेरी बहुत थोड़े दिनों तक जीवित रही थीं। उनकी कब्र न्यूयॉर्क नगर में है, जिसकी पीठपर सिर्फ लिखा है 'वाशिंगटन की माता मेरी'। वाशिंगटन के चरित्र को पढ़ने से यह बात स्पष्ट मालूम पड़ती है कि सन्तान पर माता-पिता की शिक्षा का कितना अधिक प्रभाव पड़ता है। अब अमरीका की और-और बातें तुम्हें बताते हैं।

फ्रांसीसी और अंग्रेज

जॉर्ज वाशिंगटन की जीवन-कथा के साथ-साथ अमरीका के स्वाधीनता संग्राम की कहानी भी लगी हुई है। अब यही कहना है कि उनकी जीवन-कथा के साथ वहाँ का स्वाधीनता-संग्राम किस प्रकार घनघोर हो उठा था।

जॉर्ज की माता मेरी की इच्छा थी कि जॉर्ज घर ही खेती-बारी मे कुशल होकर दुनियांदारी देखे। परन्तु लॉरेन्स—जार्ज के भाई—इस बात पर स्वीकृत नहीं थे। न मालूम भविष्य की कौन-सी दृष्टि से उन्हें अनुमान हो गया था कि जॉर्ज एक श्रेष्ठ व्यक्ति होंगे। इसलिये, उन्हें यह बात क़तई पसन्द नही थी कि जॉर्ज पिता के पेशे को अख्त्यार कर अपना जीवन बिताये। उन्होंने माता को समझाया-बुझाया कि होनहार विरवान के होत चीकने पात। जॉर्ज की रीति-नीति तथा लक्षणों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक श्रेष्ठ आदमी होगा। जब लॉरेंस ने माता को भली-भाँति समझा-बुझा दिया, तो उन्होंने फिर किसी प्रकार की बाधा न दी। लॉरेंस जॉर्ज को अपने घर ले गये और उचित रूप से शिक्षा देने लगे।

उनकी शिक्षा का लॉरेंस ने अच्छा बन्दोवस्त कर दिया था। गणित तथा इतिहास के साथ ही साथ हथियार भाँजना

व्यूह बनाना आदि के लिये म्यूक और व्रास नामक दो शिक्षक रख दिये गये थे, जो लॉरेंस के मित्र थे। लॉरेंस की आदि से अन्त तक यही इच्छा थी कि जॉर्ज लड़ाइयों में जाकर नामवरी हासिल करे ; और महज इसी गर्ज से उन्हें युद्ध की तालीम दी थी। उनके पढ़ने के लिये पुस्तकों का बन्दोबस्त कर दिया गया था, उन सब पुस्तकों के पढ़ने से वाशिंगटन को युद्ध से उत्साह और प्रेम हो गया था । उन ग्रंथों को पढ़कर युद्ध-विषयक अनेक बातों में उनका ज्ञान बहुत ही बढ़ गया था। गणित और इतिहास की उपयुक्त शिक्षा उन्हें लॉरेंस ने आप खुद दी थी।

लॉरेंस के ससुर, जिनका नाम विलियम फेयर फॉक्स था, एक नामी-गामी व्यक्ति थे। इंगलैंड के प्रसिद्ध फेयर फॉक्स परिवार के लोग उनके सगे सम्बन्धी थे। वह परिवार बहुत शिक्षित और सुरुचिसम्पन्न था। लॉरेंस ने उस परिवार से जॉर्ज का परिचय करा दिया। उन लोगों से परिचित होने से जॉर्ज को शिक्षित तथा भद्र समाज की रीति-नीति का ज्ञान हो गया और कुछ ही दिनों में वे एक अच्छे सामाजिक नेता बन गये। उनके आचार-व्यवहार में जो थोड़ा गँवईपन था, वह जाता रहा।

ऐसी ही मौके में उस परिवार के लॉर्ड फेयर फॉक्स से वाशिंगटन का परिचय हुआ । लार्ड फेयर फॉक्स सभी विषयों में निपुण थे। विद्या, व्यायाम, घुड़सवारी, शिकार

आदि निर्दोष आमोद-प्रमोद से उन्हें जैसा प्रेम था, वैस ही वे गुणियों की इज्जत करना भी जानते थे। जॉर्ज के विद्या व्यसन, विनीत व्यवहार और घुड़सवारी की कुशलता देख फेयर फॉक्स उनसे बहुत ही स्नेह करने लगे।

वर्जिनिया में लॉर्ड फेयर फॉक्स की बहुत बड़ी जमींदार थी। जमींदारी का अधिक भाग घने जंगलों से भरा था। उन जंगलों मे तरह-तरह के जंगली जानवर और रेड-इंडियन लोग रहा करते थे। इस कारण वह जंगली भूमि आदमियों से खाली पड़ी थी। उस जमीन की ठीक-ठीक नाप नहीं थी य उसमें किसी ने कभी खेती भी नहीं की। कभी-कभी लुक-छिप कर कोई गोरे औपनिवेशिक उसमे रहते थे ; मगर वे जमींदार को थोड़ा-बहुत भी, किसी प्रकार का कर नहीं देते थे। इधर फ्रांस के लोग भी उस प्रान्त में अपना अधिकार बढ़ाने की कोशिशें कर रहे थे। लार्ड फेयर फॉक्स को यह मालूम था कि वाशिंगटन जरीब करना जानते हैं। फलतः, उन्होंने वाशिंगटन के सामने उस जंगली विभाग के नाप-जोख की इच्छा जाहिर की। लॉरेंस और मेरी की इसपर सलाह ली गयी। उन लोगों ने भी किसी किस्म का उज्र नहीं किया। इसलिये, कुछ नौकर-चाकरों के साथ अमीन होकर जॉर्ज ने घने जंगल में पाँव रक्खा।

जमीन नापते-जोखते हुए जॉर्ज को मालूम हुआ कि यह बड़ा ही भयानक काम है। बीहड़ जंगल, हिंसक जानवर उसमें

भरे थे, तिसपर जमीन भी सब जगह समतल नहीं थी। वर्षा होने पर रास्ता इतना कठिन हो जाता कि क्या मजाल किसी-की कि उस होकर जाय। जाड़े की भी अनेक असह्य तकलीफें उठानी पड़ती थीं। इसकी तो गिनती नहीं थी कि भूखे-उनींदे कितने दिन बीते। एक दिन वे घास के बिछौने पर सो रहे थे कि उसमें आग लग गयी। अगर साथ का एक रेड-इण्डियन 'आग-आग' के शोर से उन्हें जगा न देता, तो जीते-जी वे राख हो जाते।

भाँति-भाँति की मुसीबतें झेलकर अन्त में वाशिंगटन ने फेयर फॉक्स को जमींदारी का बहुत ही सुन्दर नक्शा तैयार कर दिया। उनके बनाये हुए नक्शे की सहायता से जमीन के दोष-गुण लोग बड़ी सुगमता से समझ गये; साथ ही साथ इसका भी फैसला-सा हो गया कि किस भाग की कीमत कितनी होगी।

वर्जिनिया प्रदेश के शासक ने वाशिंगटन के जरीब की तारीफ सुनी, तो उन्हें सरकारी अमीन नियुक्त कर लिया। वाशिंगटन इतने सुन्दर ढंग से इतना सुन्दर काम करते थे कि चाहे जिस जमीन के हक या सरहद-चौहद्दी का बखेड़ा क्यों न हो, उनके नक्शे से ही उसका फैसला हो जाता। अमीन का कष्टकर काम करने से वाशिंगटन को बड़ा ही लाभ हुआ था।

वाशिंगटन स्वभाव के सरल और बलवान थे; उद्यम

करने से तो वे और भी तन्दुरुस्त तथा वलवान हो उठे। अमीनी करते हुए उनकी देखने की शक्ति इतनी तेज हो गयी थी कि कितनी बार तो एक बार नजर दौड़ाकर ही कह देते थे, कौन-सा पहाड़ कितनी दूर पर है, उसकी ऊँचाई कितनी है अथवा वह नदी कितनी चौड़ी है। तुम सहज ही समझ सकते हो कि जिस व्यक्ति को भविष्य मे संयुक्त राज्य का सेनापति बनकर उसकी भलाई करनी है, उसके लिये इन वातों का ज्ञान कितना लाभजनक हुआ था।

जब वाशिंगटन जरीब कर रहे थे, उस समय की एक घटना से यह बात स्पष्ट हो उठी थी कि उनका चरित्र कितना वलवान था, उनमें परोपकारवृत्ति कितनी अधिक थी। एक दिन एक नदी के किनारे वे नाप-जोख मे लगे थे। नजदीक कोई स्त्री रो रही थी। वाशिंगटन उसके रोने का कारण जान लेने को वहाँ गये। उन्होंने देखा कि उस औरत की गोद का लड़का नदी में ऊब-डूब करता हुआ तेज धारा मे वहता जा रहा है। बरसात की खौफनाक धारा, नदी ने भयंकर रूप धारण कर लिया था। पानी से दोनों कछार छलक पड़े थे, पानी वेग से आगे की ओर दौड़ रहा था। कभी-कभी पहाड़ी टीलों से टकराकर उसमे घूमता हुआ घेरा-सा हो जाता, जिसे देखकर लोग डर-से उठते थे। लेकिन, वह स्त्री बीच-बीच मे नदी मे कूदने को तैयार हो जाती थी और देखनेवाले वलपूर्वक उसे रोक लेते थे।

वाशिंगटन ने विचारा, और अधिक देर करने से बच्चे को बचाना असम्भव हो जायगा। उनसे और अधिक न देखा गया और वे कूद पड़े। अन्त में अपने प्राणों की ममता त्याग-कर उन्होंने उस बच्चे को मौत के मुँह से निकाल लिया। मौत के मुँह से निकले हुए बच्चे से अपनी गोद भरने पर माता ने दिल से वाशिंगटन को दुआयें दीं। वह आशीर्वाद देती हुई बोली—'आप राजा बनें।' उस स्त्री का आशीर्वाद भविष्य में बहुत अंशों में पूरा भी हुआ था।

कुछ ऐसा कारण आ गया था कि ओहियो नदी के किनारे के प्रान्त की निस्बत अंग्रेज औपनिवेशिकों और फ्रांसीसियों से लड़ाई की नौबत आने को थी। अंग्रेजों ने देखा कि फ्रांसीसियों से लड़ाई होकर ही रहेगी, तो उन्होंने सेनायें इकट्ठी कीं और उन्हें युद्ध की शिक्षा देने लगे। कामों की सुविधा के लिये उन्होंने उपनिवेश को छोटे-छोटे भागों में बाँट दिया। लॉरेंस रण-कौशल में निपुण थे, इसलिये वे एक हिस्से के प्रधान बनाये गये।

मगर, कुछ ही दिनों में उनकी तन्दुरुस्ती जाती रही, उनमें यक्ष्मा रोग के लक्षण दिखायी दिये। फल-स्वरूप कुछ ही दिनों तक काम करने के बाद उन्हें खाट पकड़नी पड़ी थी। एक दिन उन्होंने जॉर्ज को बुलाकर कहा—"भाई, हमारा शरीर बिल्कुल अवश-सा हो पड़ा है, इसलिये मैं इस बहुत बड़ी जिम्मेवारी के काम को छोड़ दूँगा। मेरी इच्छा है कि यह काम तुम्हें ही

सौंप दूँ।" अचरज से जॉर्ज ने उत्तर दिया—"भैया, मेरी उम्र तो सिर्फ उन्नीस साल की है, क्या गवर्नर साहब मुझ-जैसे बालक पर ऐसे काम का भार सौंपना कबूल करेंगे?"

लॉरेंस ने कहा—"भाई, सभी समय उम्र के हिसाब से गुण का विचार नहीं किया जाता। तुम्हारे-जैसा कार्य-कुशल व्यक्ति मिलना असम्भव है। काम से इस्तीफा देने के पहले ही मैं गवर्नर साहब से इसका जिक्र करूँगा।"

"अच्छा, तो इस काम मे मुझे क्या-क्या करना पड़ेगा?"

"फौज को कवायद आदि लड़ाई की बातें सिखानी पड़ेंगी। इसपर खूब ही ध्यान रखना होगा कि वे निडर और कुशल योद्धा बनें। यह काम बड़ी भारी जिम्मेवारी का है। मगर मेरा विश्वास है कि तुम इसे भली तरह ही निबाह लोगे। साल में १५००) वेतन मिलेंगे।"

जॉर्ज ने नम्र होकर कहा—"भैया; परिश्रम करने से तो मै पीछे न हटूँगा; परन्तु, सच्ची बात यह है कि ऐसे काम से मैं वाकिफ नही। डर होता है, शायद मै भली-भाँति काम न कर सकूँ।"

जब लॉरेंस ने इस्तीफा देने और अपनी जगह पर वाशिंगटन को नियुक्त करने की बात उठायी, तो फौरन ही बिना किसी उज्र के गवर्नर आदि ने उसे मंजूर कर लिया। वाशिंगटन सूबेदार बनाये गये।

उस समय लॉरेंस का स्वास्थ्य बहुत ही खराब हो गया था। डाक्टर-वैद्यों ने उन्हें किसी उष्णप्रधान देश में जाने की सलाह दी। उनकी सलाह के मुताविक लॉरेंस वार्वेडोज टापू गये थे। वाशिंगटन भी उनके साथ ही थे। मगर, जगह बदलने से भी कोई लाभ न हुआ। उस समय वहाँ चेचक बहुत जोरों से फैला था। एकाएक वाशिंगटन चेचक के शिकार हो गये। ईश्वर की दया से रोग से तो उनका पिंड छूटा, परन्तु चेचक के दाग शरीर में रह गये। लॉरेंस ने जब देखा कि मेरा जीवन-दीप अब बुझ जाने ही को है, तो उन्होंने अपने परिवार के लोगों के वीच शांतिपूर्वक मरने की इच्छा प्रकट की। वार्वेडोज द्वीप से वे वर्नन शैल को लौट आये और डेढ़ मास के वाद उनका स्वर्गवास हो गया। उस समय लॉरेंस की उम्र वत्तीस साल की थी। मरने के पहले वे अपनी स्त्री और वेटी के नाम सारी सम्पत्ति वसीयत कर गये थे। वाशिंगटन को भी उन्होंने काफी धन-सम्पत्ति दी थी और उस वसीयतनामे में भी लिख गये थे कि अगर मेरी पुत्री की मृत्यु हो जाय, तो वर्नन शैल तथा सारी सम्पत्ति के हकदार वाशिंगटन होंगे।

अपने भाई की मृत्यु के पूर्व ही वाशिंगटन काम करने लगे थे। फ्रांसीसियों से लड़ाई होना भी एक प्रकार से निश्चित हो गया था। फ्रांसीसी लोग भी युद्ध के लिये तैयार हो रहे थे। उन्होंने ओहियो नदी के किनारे एक क़िला भी बनाया था। उस समय डिन्विडी इंग्लैंड से वर्जिनिया के गवर्नर होकर

आये थे। उत्तरी ओर का कार्य-भार उन्होंने वाशिंगटन पर सौंप दिया था। इतने बड़े कार्य की जिम्मेवारी रहते हुए भी जॉर्ज ने अपने भाई की सेवा में, जब तक कि वे जिन्दे रहे थे, एक दिन के लिये भी त्रुटि नहीं की थी।

गवर्नर डिन्विडी ने मन मे सोचा, यदि युद्ध के पहले फ्रांसीसियों से आपसी फैसला हो जाय, तो बहुत ही अच्छा हो। लेकिन, दूत बनकर जानेवाले आदमी की बिल्कुल ही कमी थी। और, इस कमी का एक बहुत बड़ा कारण भी था कि फ्रांसीसियों का किला वहाँ से दो सौ कोस पर था। उन दिनो जिस्ट नामक एक अंग्रेज थे, जिन्होंने वर्जिनिया के पश्चिम के जंगली प्रान्तों में घूम-घूमकर अपने अनुभव को बढ़ाया था। जब गवर्नर ने उनसे दूत के काम का प्रस्ताव किया, तो वे बोले—"महोदय, यह जरा टेढ़ी खीर है। राह में घने जंगल हैं, दूर तक दुर्गम पहाड़ी भूमि है, कहीं दलदल है। तिसपर उन जंगलों मे जो आदिम जाति के लोग रह रहे हैं, उनमे से अधिकतर लोग फ्रांसीसियों के हुक्म मानते हैं। इसलिये, इस काम के लिये योग्य आदमी मिलना मुश्किल है।" गवर्नर साहब बहुत दिनों तक कोशिशें करते रहे, परन्तु दूत न जुटा सके।

एक दिन वे बहुत ही निराश होकर बैठे हुए थे कि वाशिंगटन ने उनसे मुलाकात की और कहा—आप यदि मुझे इसके योग्य समझें, तो मैं इस कार्य के लिये दूत बनने को त्यार हूँ।

वाशिंगटन को वैसे साहसिकतापूर्ण काम के लिये तैयार होते देख गवर्नर साहब तो ताज्जुब में आ गये। उन्होंने कहा—"आपके दुस्साहस को देख मैं हैरत में हूँ। दूत के कार्य पर मैं आपको नियुक्त करता हूँ। आप कब तक जाने का इरादा कर रहे हैं?"

"जाड़े के पहले ही रवाने हो जाऊँगा।"

गवर्नर ने खुश होकर उस कार्य का भार वाशिंगटन पर सौंप दिया। उनके हाथ में एक खत देकर उन्होंने कहा—"इसे फ्रांसीसी गवर्नर के हाथ में दे देंगे और उत्तर के लिये एक सप्ताह तक वहाँ ठहरेंगे। यदि उस समय तक उत्तर न मिला, तो चल पड़ेंगे।"

पुत्र को ऐसा जान-जोखिम का काम ग्रहण करते देख उनकी माता मन ही मन बहुत दुखित हुईं, परन्तु वैसा कुछ न कहकर बोलीं—"तुम-सरीखे बालक के लिये यह काम बहुत ही कठिन है। फिर भी मैं आशीर्वाद देती हूँ कि तुम अपने कर्त्तव्य को महत् रूप में ही पालोगे।"

आठ साहसी आदमियों को साथ लेकर वाशिंगटन वर्जिनिया से चल पड़े। राह बताते चलने के लिये एकाध आदिम अधिवासी थे। वर्षा और अविश्रान्त बर्फ गिरने के कारण उस पथ से आगे बढ़ना असम्भव ही हो उठा था। फिर भी तरह-तरह की कठिनाइयों का सामना करते हुए ढाई महीने में वे फ्रांसीसियों के किले में पहुँचे। उस पत्र का उत्तर देने के लिये

फ्रांसीसी गवर्नर ने एक सप्ताह की मुहलत ली और अपने मंत्रियों से सलाह-परामर्श करने लगे। इस अवसर में वाशिंगटन ने क्या किया कि फ्रांसीसी क़िले की स्थिति, उसके बनाने का कौशल, फौजी शक्ति तथा अन्य आवश्यकीय विषयों को देख-भाल कर उसे अपनी डायरी में लिख लिया। उन्होंने सोचा, हो सकता है, कभी इसका काम पड़ जाय।

समय पर गवर्नर का खत मिल गया और वे चल पड़ने को तैयार होने लगे। कड़ाके का जाड़ा पड़ने लगा था, वर्फ भी खूब ही गिरी थी। जहाँ-तहाँ वर्फ। राह बहुत ही दुर्गम बन गयी थी। आँधी भी आने लगी थी। आने के समय जितने कष्ट भोगने पड़े थे, जाते हुए उससे अधिक कठिनाइयाँ झेलने की नौबत आयी। और, इधर फ्रांसीसियों ने क्या चाल खेली कि घूस देकर वे उन रेड-इण्डियनों को अपनी ओर मिला लेने की कोशिशें करने लगे, जो राह दिखाने के लिये वाशिंगटन के साथ आये थे। उस समय के रेड-इंडियन शराब से बहुत प्रेम रखते थे। फ्रांसीसी उन्हें शराब पिलाकर ही वश मे करने की अधिक कोशिशें कर रहे थे। उनके इस व्यवहार से वाशिंगटन के क्रोध का ठिकाना न रहा, उन्होने उन्हे खूब ही नसीहत दी। नतीजा यह निकला कि फ्रांसीसियों ने फिर किसी तरह का दुर्व्यवहार नहीं किया।

स्थल-मार्ग से आना तो एक प्रकार से असम्भव ही हो उठा था। इस कारण जल-पथ से आना ही उन्होंने तय

किया। परन्तु, नाव पर भी उन्हें कुछ सुविधा न हुई। और कभी नाव से, कभी पैदल चलकर भाँति-भाँति से जान को जोखिम में डालकर अन्त में वे जनवरी में वर्जिनिया के प्रधान नगर विलियम्सवर्ग पहुँचे। वाशिंगटन को सुरक्षित लौटते देख गवर्नर महोदय बड़े ही आनन्दित हुए। सबसे अधिक प्रसन्न तो वे वाशिंगटन की दिनचर्या पढ़कर हुए। जाड़े के दिनों में व्यवस्थापिका सभा का कार्य वन्द रहता था। इस कारण उसके सदस्यों की जानकारी के लिये गवर्नर महोदय ने वाशिंगटन के इस कार्य के दैनिक वृत्तान्त को छपवाकर बँटवा दिया। वह वृत्तान्त इतनी हड़बड़ी में छापा गया था कि वाशिंगटन को इसमें सुधार करने तक का समय न मिला था। लेकिन, यह दिनचर्या इतनी रोचक वन पड़ी थी कि जिसने इसको पढ़ा, वही मुग्ध हो गया। उस समय के समाचार पत्रों ने भी उसका सारांश छापा था।

गवर्नर महोदय ने सन्धि की तो बहुतेरी कोशिशें कीं, पर सन्धि न हो सकी। युद्ध होना निश्चित हो गया। उस समय इंगलैंड की राजगद्दी पर द्वितीय जार्ज वैठे थे।

पहली लड़ाई

उन्होंने फ्रांसीसियों से लड़ाई करने की आज्ञा दे दी। उपनिवेशों में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। वर्जिनिया में सेना संगठन करने का भार वाशिंगटन पर पड़ा। उस समय सैनिकों को बहुत ही थोड़ी तनखा मिलती थी। इसलिये तन्दुरुस्त और सबल आदमी फ़ौज में नाम नहीं

लिखाना चाहते थे। जो गरीब थे, जिन्हें रोटी कमाने का दूसरा चारा नही था, सिर्फ वही लोग सेना मे बहाल होने को तैयार हुए। जॉर्ज ने मन में विचारा कि जब तक इस नियम का उलट-फेर नहीं होता, तब तक काम नहीं चलने का। उन्होंने गवर्नर से जाकर कहा। गवर्नर महोदय ने इसके लिये एक युक्ति निकाली। उन्होंने घोषणा कर दी कि जो-जो आदमी इस युद्ध मे हाथ बॅटायेंगे, ओहियो नदी के किनारे की छ लाख बीघे जमीन बतौर इनाम के उनमे बाँट दी जायगी।

जब गवर्नर का यह घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ, तो बहुत से लोग फौज मे भर्ती होने को तैयार हो गये। अच्छे-अच्छे बलवान लोग सेना में बहाल हुए। वाशिंगटन के मन की पूरी हुई। गवर्नर महोदय ने देखा कि जनता वाशिंगटन पर श्रद्धा रखती है। यह देखकर उन्होंने वाशिंगटन ही को सेनापति बनाना चाहा। मगर, जॉर्ज ने विचारा कि यदि मैं सेनापति बनाया जाता हूँ, तो फ्राइ नामक एक कुशल आदमी का अपमान करना होता है। यह सोचकर उन्होंने गवर्नर से कहा—मेरी उम्र बहुत थोड़ी है और लड़ाई का मुझे विशेष ज्ञान भी नहीं; इसलिये मुझे फ्राइ के मातहत रखना ही अच्छा होगा।" उनके ऐसे निस्वार्थ व्यवहार से जनता को बड़ा ही आनन्द हुआ। गवर्नर ने भी वाशिंगटन को धन्यवाद दिया और उन्ही के कहे मुताबिक काम किया।

जॉर्ज वाशिंगटन का हृदय कितना उदार और महत् था,

यहाँ हम उसका एक उदाहरण और देते हैं। यह घटना भी उसी समय की है। एक दिन पेइन नामक एक आदमी से वाशिंगटन का झगड़ा खड़ा हो गया। बात-चीत होते-हवाते दोनों में मत-भेद हो गया। जब युक्ति और तर्क से पेइन वाशिंगटन को न हरा सके, तो इतना उत्तेजित हुए कि उन्होंने वाशिंगटन पर वार किया। वाशिंगटन जमीन पर जा रहे। पेइन के इस व्यवहार से उनके वन्धु-वान्धव उन्हें मारने पर आमादा हुए। वाशिंगटन ने कहा—भाई, हमारी अन्याय-बातों पर ही इन्हें क्रोध आया था। इनका कोई कसूर नहीं। वाशिंगटन की इन बातों पर लोग दंग रह गये। पेइन जब घर गये, तो उन्हें वाशिंगटन की एक चिट्ठी मिली। उसमे वाशिंगटन ने पेइन को उनसे भेंट करने के लिये लिखा था। उन दिनों ऐसा रिवाज था कि दो आदमियों में किसी प्रकार का झगड़ा होने से द्वन्द्व युद्ध से उसका निबटारा कर लिया जाता था। पेइन ने समझा. बुलाने का यही कारण होगा और पास मे पिस्तौल लेकर वे वाशिंगटन से मिलने गये। किन्तु, उन्हें देखते ही वाशिंगटन ने उनकी बड़ी आवभगत की तथा बोले—'महोदय, कल मैं आप से जिस अन्याय-तरीके से पेश आया था, उसके लिये मैं बहुत ही दुखित और लज्जित हूँ। मुझे क्षमा करें।' वाशिंगटन की इस क्षमाशीलता पर पेइन अवाक् रह गये। मनुष्य, खासकर कोई शक्तिशाली मनुष्य, जो इस तरह अन्याय को सह सकता है, वह कितना महान् है यह जानकर पेइन ने लज्जा से सिर

झुका लिया। अगर वाशिंगटन उनसे द्वन्द्वयुद्ध भी करते, तो भी शायद उनके हृदय मे इस तरह की लज्जा न आती। इस घटना के बाद से पेइन जन्म भर जॉर्ज के उपकारी मित्र बने रहे।

फ्रांसीसियों से युद्ध अनिवार्य हो गया। कर्नल फ्राइ और वाशिंगटन सीमान्त प्रदेशों की ओर चल पड़े; उनपर उन्हीं प्रदेशों की रक्षा का भार सौंपा गया था। नियत स्थान पर पहुँचने के बाद ही कर्नल फ्राइ चल बसे। उनको जगह पर वाशिंगटन सेनापति नियुक्त किये गये। फ्रांसीसी तो युद्ध के लिये पहले से ही तैयार बैठे थे। फिर क्या था, दोनों तरफ से घमासान लड़ाई छिड़ गयी, जीत वाशिंगटन के हाथ रही।

लड़ाई में फतह पाकर वाशिंगटन ने सोचा, यह लड़ाई ही नहीं हुई। यह तो किसी भी हालत मे सम्भव नहीं कि एक छोटे से युद्ध में हारकर फ्रांसीसी सीमान्त प्रदेशों के अधिकार से हाथ धो बैठेंगे। इसका बदला वे अवश्य चुकायेंगे और कोई बड़ी सेना लेकर फिर से हमला करेंगे। और हुआ भी वही। थोड़े ही दिनों मे बहुत-सी सेना इकट्ठी कर फ्रांसीसियो ने वाशिंगटन के किले पर चढ़ाई कर दी। मगर इस बार उन्हें मुँह की खानी पड़ी। फ्रांसीसियों के पास अनगिनत सेना थी, अपनी मुट्ठी भर सेना से जब किले को बचाना उन्होंने असम्भव समझा, तो उन्होंने उसे शत्रुओं के हाथों सौंप दिया। और बड़े कायदे से सारे सरो-सामान तथा अपने साथियों के साथ वे वर्जिनिया लौट गये।

अब गवर्नर से उनका मतभेद शुरू हुआ। गवर्नर साहब ने कहा, "आपको फ्रांसीसी किले पर हमला करना चाहिये था।" वाशिंगटन ने कहा – अपनी मौजूद सेना के सहारे ऐसा काम करने जाना, मृत्यु को गले लगाने के अलावे और कुछ नहीं।" गवर्नर बोले—अच्छा तो मैं इंग्लैंड से सेना मँगाता हूँ, उनकी इज्जत इन सैनिकों से अधिक होगी। गवर्नर की बातों से वाशिंगटन असन्तुष्ट हो गये और इस्तीफ़ा देकर वे वर्नन शैल चले गये।

उस समय यूरोप में भी अंग्रेज और फ्रांसीसियों में ठनी हुई थी। जब यहाँ के गवर्नर ने वहाँ सेना भेजने का प्रस्त ाव भेजा, तो पैदल सेनाओं की दो टोलियाँ लेकर सेनापति ब्रेडक अमेरिका पहुँचे। ब्रेडक ने विलायत में ही वाशिंगटन की अनोखी प्रतिभा की बात सुनी थी। उन्होंने गवर्नर से कहा— "वाशिंगटन को असन्तुष्ट करके आपने अच्छा काम नहीं किया है। कोई भी व्यक्ति ऐसे व्यवहार से अपने को अपमानित समझ सकता है। इसके पहले ही गवर्नर को ग्लानि और पछतावा हुआ था, वे ब्रेडक की बातों को काट न सके। ब्रेडक ने वाशिंगटन को एक पत्र लिखकर उस जिम्मेवारी के पद को ग्रहण करने का अनुरोध किया। वाशिंगटन ने ब्रेडक के अनुरोध को न मानना अनुचित समझा, इसलिये लिखा कि आपके अनुरोध के मुताबिक मैं फिर से सेना-विभाग में शामिल होऊँगा। वाशिंगटन की पूरी-पूरी इच्छा थी कि

लड़ाई की योग्य शिक्षा और ज्ञान लाभ करें। ब्रेडक जैसे साहसी, चतुर और उदार सेनापति के मातहत रहने से हम उन सब विषयों मे विशेष ज्ञान लाभ करेंगे, जिन विषयों की हमे जानकारी नहीं है। उनकी माँ मेरी का इरादा था कि जॉर्ज अब सेना-विभाग मे साथ न देकर घर रहे और गिरस्ती के कामों मे ध्यान दे। मगर जॉर्ज के हृदय के तारों में देश-सेवा की भावना ने ऐसी चोट पहुँचायी थी कि इस बार माता की करुणा भरी विनती से भी वे न डिगे। उन्होंने मेरी से पूछा--"माँ, और देश क्या तुम्हारी भी माँ नहीं ? देश के ऐसे दुर्दिन मे क्या शुभेच्छुओं का यह कर्त्तव्य है कि उसकी सेवा न करे ?" इसके आगे माता ने एक शब्द भी न कहा । सन्तुष्ट होकर पुत्र को युद्ध मे भाग लेने का आदेश दिया।

उस समय युद्ध मे विद्रोह के भी लक्षण दिखयी दिये थे। आदिम अधिवासी लोग अङ्गरेजों से असन्तुष्ट थे और उन्होंने फ्रांसीसियों का साथ दिया था। वे जंगलों और पहाड़ों की ओट से लुक-छिप कर अपने अचूक निशानों से अङ्गरेजों को मार गिराते थे। वाशिंगटन ब्रेडक से जाकर समय पर मिल गये और फ्रांसीसियों के किले पर चढ़ाई करने के लिये चल पड़े। राह मे किसी ने भी कोई रुकावट नहीं डाली। वे निष्कण्टक की नाई मेनांगा हेला नामक नदी से पार उतरे। उस समय तक दुश्मनों का कोई सुराग न मिला। मगर वाशिंगटन के मन में शांति नहीं थी, उनकी धारणा थी कि

दुश्मनों के दल के रेडइंडियन जरूर ही कहीं छिपकर हैं; ब्रेडक के पूछने पर उन्होंने अपना संदेह कह सुनाया। ब्रेडक ने कहा—आप भी जैसे! अजी, हमारी इन शिक्षित सेनाओं के आगे जंगली लोग किसी भी भाँति खड़े न रह सकेंगे। इसलिये, उन्हें ढूँढ़ निकालने की फिक्र से आप एक तिल भी विचलित न हों। वाशिंगटन चुप रह गये; मगर रेडइंडियनों की धोखे से चढ़ाई का संदेह उनके मन में रह ही गया।

अन्त में, वाशिंगटन को जो संदेह था, वह सत्य निकला। जंगल की राह से वे और कुछ ही दूर जा पाये थे कि रेड-इंडियनों के एक दल ने अङ्गरेज सेना पर हमला कर दिया। एकाएक आक्रमण करने से एवं उन असभ्यों की विकट रण-गर्जना से अङ्गरेज-सेना लड़ने के बदले भागने लगी। सेनापति ब्रेडक घायल हो गये। उनके बदले सेनापति बनकर वाशिं-गटन युद्ध करने लगे। दुश्मन उन्हें मार डालने की भरसक कोशिशें करने लगे। एक गोली लगने से उनका घोड़ा मर गया। उसी दम वे दूसरे घोड़े पर सवार होकर लड़ने लगे। दूसरा घोड़ा भी दुश्मनों की गोली का निशाना बना। उनकी युद्ध-पोशाक में भी चार-पाँच गोलियाँ लगी थीं। उनकी छाती पर घड़ी की एक चाबी झूल रही थी, वह भी गोली से उड़ गयी! आज मानो कोई अदृश्य हाथ उन्हें मृत्यु के मुँह से खींच-खींचकर बचा रहा था। मगर, अपने जीवन को विपदों में डालकर भी वे युद्ध के मैदान से पीछे न हटे। अदम्य उत्साह

से सेना का परिचालन करते रहे। उस दिन अँगरेजों की सेना मे अगर वाशिंगटन न रहे होते, तो उनकी रक्षा का कोई उपाय ही नहीं रहता। इस प्रकार से दुश्मनों की वाढ़ रोककर वे कायदे के साथ लौट सके थे। रास्ते में ब्रेडक की मृत्यु हो गयी। मरते समय उन्होंने दुःख के साथ कहा—"अगर मैं आपकी वात मानता, तो हमलोगों की ऐसी दुर्दशा नहीं होती।" मरने के पहले अपना विश्वासी नौकर विशॉप तथा अपना घोड़ा वे वाशिंगटन को दान कर गये।

वाशिंगटन की वीरता की कहानी वर्जिनिया पहुँच चुकी थी। जब वे वहाँ पहुँचे, तो लोगों ने वड़े आदर से उनका स्वागत किया।

इस घटना के दो-एक वर्ष वाद एक आदिम अधिवासी से वाशिंगटन की भेंट हुई थी। उसने वाशिंगटन से कहा था—"मैं आदिम अधिवासियों का एक नेता हूँ। मेरी उम्र वहुत अधिक है। अपनी जिन्दगी मे मैंने अनेक लड़ाइयाँ देखी हैं; मगर मनांगा-हेला के युद्ध मे जो वीरता आपने दिखायी थी, उसे मैं जीवन में कभी भी नहीं भूल सकूँगा। उस दिन आपको मार गिराना ही हमलोगों का एकमात्र उद्देश्य था। मगर, ताज्जुव है कि हमलोगों के अचूक निशाने पग-पग पर वेकार हो रहे थे। जव तक पीछे कोई दैवी-शक्ति न हो, तव तक किसी भी तरह से वैसी दशा में मनुष्य का वचना असम्भव है। मै और अधिक दिनों तक न वचूँगा;

परन्तु मैं कहे जाता हूँ कि आप एक विशाल साम्राज्य की प्रतिष्ठा करेंगे।"

मनांगा-हेला की लड़ाई जीतकर तो आदिम अधिवासियों के जुल्म हद तक पहुँच गये। वे गाँवों को लूट लेने लगे। असहाय गाँववालों के घरों में आग लगा देने लगे। क्या स्त्री-पुरुष और क्या बाल-वृद्ध, जिसे वे पाते, उसे ही बेरहमी से मार डालते थे और फ्रांसीसी उनके सहायक होकर उन्हें बढ़ावा देते थे। इस कारण उनका मिजाज हमेशा सातवें आसमान पर रहता था।

उस समय पिट् साहब इंगलैंड के प्रधान मंत्री थे। वे बहुत बड़े राजनीति-विशारद थे। वे ऐसी बुद्धिमानी से फ्रांसीसियों से लड़ने लगे कि देखते ही देखते पृथ्वी के सभी स्थानों में अँगरेजों से फ्रांसीसियों की हार होने लगी। सेनापति वुल्फ ने कनाडा को अपने कब्जे में कर लिया और फ्रांसीसियों को वहाँ से निकाल बाहर किया। इधर गवर्नर डिन् विडी की एवज में एक अन्य योग्य गवर्नर भेजे गये। क्विं नामक एक व्यक्ति युद्ध के लिये सेनापति बनकर आये।

क्विं साहब ने वाशिंगटन से मिलकर सलाह-मशविरा किया। दोनों ने मिलकर फ्रांसीसी किले पर धावा करने की ठानी। उन लोगों ने विचारा कि यदि फ्रांसीसियों के किले पर हम दखल जमा सकते हैं, तो फ्रांसीसियों पर से आदिम

अधिवासियों का विश्वास उठ जायगा। फिर तो हम सहज ही उन्हें अपने वश मे कर लेंगे।

इसी सिलसिले में जॉर्ज वाशिंगटन के जीवन मे और भी एक याद करने योग्य घटना घटी थी। एक बार अपने किसी परिचित मित्र के अनुरोध से वे उनके अतिथि हुए थे। वहाँ भोजन करते समय मार्था नामकी एक विधवा युवती से उनकी जान-पहचान हुई। पहली ही भेंट में एक-दूसरे को प्यार करने लगे थे। उस समय यही बात तय हुई कि फ्रांसीसियों के हाथों से किले को ले लेने पर दोनों की शादी हो जायगी।

इस बार वाशिंगटन के कहे मुताबिक सेनापति क्राम्वि चारों ओर सावधानी से निगाह रखते हुए आगे बढ़ने लगे। इतनी सावधानी रखने पर भी आदिम अधिवासी एकाएक उनपर टूट ही पड़े। सेना की जो टोली आगे-आगे चल रही थी, उसको तो उन्होंने तहस-नहस कर दिया। अन्त में आदिम अधिवासी हारकर भाग खड़े हुए।

वाशिंगटन ने क्राम्वि से कहा—"अब आप निश्चिंत होकर यहीं मेरी राह देखें, मैं स्वयं थोड़ी-सी सेना के सहारे फ्रांसीसियों को हरा देता हूँ।" क्राम्वि ने इसपर कोई एतराज नहीं किया। वाशिंगटन अकेले किले की तरफ चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि किले में कोई पंछी भी नहीं। कनाडा में अपनी हार हुई सुनकर ही वे किले को छोड़कर चलते हुए।

बिना युद्ध किये ही वाशिंगटन ने किले पर अधिकार जमाया। उसपर उन्होंने ब्रिटिश-पताका फहरा दी और उसका नाम 'पिट् किला' रक्खा। इसके बाद ओहियो नदी के किनारे राज्य बढ़ाने की चेष्टा फ्रांसीसियों ने फिर कभी भी न की। अब तक जो आदिम अधिवासी फ्रांसीसियों के हुक्मबरदार और भक्त थे, उन्होंने दल के दल आकर अँगरेजों की अधीनता स्वीकार कर ली।

किले को जीत चुकने पर वर्नन शैल में उन्होंने मार्था से विवाह किया। उसके बाद वे व्यवस्थापिका सभा के मेम्बर बनाये गये। जब पहले दिन वे सभा में हाजिर हुए, तो चारों ओर से मेम्बर लोग उनकी तारीफ करने लगे। अपनी तारीफ सुनकर वाशिंगटन लज्जा से मुरझा गये। जब बोलने के लिये खड़े हुए, तो 'मित्रो !' और 'महोदयगण !' कहकर ही चुप हो गये। शरीर से उनके पसीना छूटने लगा, सर मे चक्कर आने लगा। उनकी ऐसी दशा देखकर सभापति महोदय ने कहा—"आप बैठ जाइये। हमें मालूम है कि आप जैसे साहसी हैं, वैसे ही विनयी भी हैं। आपको विशेष कुछ न कहना पड़ेगा।"

व्यवस्थापिका सभा के मेम्बर होने के बाद वे अपनी पत्नी के साथ वर्नन शैल में रहते हुए अपनी जायदाद की देख-भाल और खेती के कामों मे लग गये थे। शिकार, खेती-बारी की देख-रेख, घोड़े-गाय आदि पशुओं का पालन-पोषण तथा जमींदारी

की तरक्की, इन कार्यों मे वे मशगूल-से हो गये थे। उस समय उनके नौकर-नौकरानियों की संख्या एक हजार से कम न थी।

उस समय तक अमेरिका से दास-व्यवसाय उठ नहीं सका था। वहाँ के सभी धनी लोगों के यहाँ खरीदे हुए गुलाम रहते थे। उन गुलामों से लोग पशुओं-जैसा व्यवहार करते थे। परन्तु, वाशिंगटन और उनकी स्त्री मार्था उनसे दयापूर्ण व्यवहार करती थीं। दास-दासियों के बीमार पड़ने पर वाशिंगटन उनके इलाज का बन्दोबस्त किया करते थे और वे स्वयं जैसा भोजन करते थे, वैसा ही भोजन उन्हें भी देते थे। इस तरह वाशिंगटन के पन्द्रह वर्ष तो बड़े मजे मे कटे थे। उन्हें विश्वास था कि जीवन के बाकी दिन भी इसी प्रकार शांतिपूर्वक कट जायेंगे। मगर, ईश्वर उनसे जो कोई महत् कार्य कराकर संसार मे उन्हें अमर कर देंगे, यह वे कैसे जानते ?

स्वाधीनता की लड़ाई

यह तो तुम्हें मालूम ही है कि जिन लोगों ने अमेरिका में उपनिवेश कायम किया था, वे इङ्गलैंडवालों-जैसे अँगरेज ही थे। इङ्गलैंड के लोगों ने ही अमेरिका में आकर अपने घर-द्वार बनाये थे, यह बात तुमसे हम कह चुके हैं। परन्तु, अँगरेज होते हुए भी अलग होकर दो देशों में बसने की वजह से उनके स्वार्थ भी अलग-अलग हो गये थे। अब स्वार्थ के लिये दोनों दलों में दाव-पेंच चलने लगे।

अब उसी घात-प्रतिघात की कहानी तुम्हें सुनाते हैं। औपनिवेशिकों की भलाई के लिये फ्रांसीसियों से जो लड़ाई हुई थी, उसमें इङ्गलैंड से बहुत सेना आयी थी। साथ ही यूरोप में फ्रांसीसियों से जो युद्ध हुआ था, उसमे भी काफी रुपये खर्च हुए थे। इन कारणों से इङ्गलैंड पर बहुत रुपये का कर्ज लद गया था। युद्ध के बाद पार्लियामेंट में यह प्रश्न उठा कि यह कर्ज किस प्रकार से चुकाया जाय। इङ्गलैंड की पार्लियामेंट ने तय किया कि जो युद्ध अमेरिका में हुआ, उससे तो औपनिवेशिकों का स्वार्थ है। खासकर औपनिवेशिक लोग गाँठ के भरे-पूरे हैं; इसलिये वहाँ के लड़ाई-दंगे का खर्च उन्हींसे अदा किया जाय। और, जो लड़ाई यूरोप में हुई है, उसमें

इङ्गलैंड का स्वार्थ है : इस कारण उसका भार इङ्गलैंड ही अपने ऊपर लेगा। पार्लियामेंट में यह स्थिर हो जाने पर अमेरिका पर कर बैठाया गया।

पार्लियामेंट के ऐसे व्यवहार से औपनिवेशिक लोग आग-भभूका हो गये। उन लोगों ने कहा—अगर इङ्गलैंड यह कहे कि हम कर्ज से दब रहे हैं, हमे रुपये से मदद करें, तो हम सहायता करने को तैयार हैं। लेकिन, जिस पार्लियामेंट मे हमारी ओर से बोलनेवाला कोई प्रतिनिधि न हो, वह यदि हमपर किसी प्रकार के कर का दावा करे, तो वह हम नहीं दे सकते। खासकर फ्रांसीसियों से जो लड़ाई हुई, उसमे तो अँगरेजों ही का गौरव बढ़ा। और, हमने क्या लड़ाई के लिये खर्च नहीं किया ? सबसे पहले तो हमे देशी सेना का खर्च चलाना पड़ा है, दूसरे जो सेना इङ्गलैंड से आयी, उनके लिये भी खर्च करके हमे घटी सहनी पड़ी। इसलिये, जिस प्रकार हमने अपने यहाँ की लड़ाई का खर्च अपने ऊपर उठाया, वैसे ही इङ्गलैंड भी उठाये।

इस घटना से इङ्गलैंड मे दो दल हो गये। पिट्, वर्क आदि प्रसिद्ध व्यक्तियों ने अमेरिका की वात का समर्थन किया। परन्तु, इंगलैंड के राजा तृतीय जॉर्ज तथा उनके मंत्री ग्रेनभिल ने किसीको एक न सुनी । तिसपर तुर्रा यह कि फिर १७६५ मे स्टाम्प-कानून नाम का एक नया कानून उन्होंने जारी किया। इस कानून से यह तय किया गया कि अमेरिका में रुक्का-

तमस्सुक, बैनामा आदि कागजात एक निर्धारित मूल्य के कागज पर लिखने होंगे और वे कागज इंगलैंड से अमेरिका भेजे जायेंगे। उन कागजों की बिक्री से जो लाभ होगा, वह इंगलैंड की सरकार का होगा।

राजा तृतीय जॉर्ज केवल इसी नियम को बनाकर चुप नहीं बैठ गये, बल्कि अमेरिकावालों के लिये उन्होंने कुछ और-और नियम भी बनाये। जैसे, अमेरिका के लोग स्वाधीन-रूप से व्यापार नहीं कर सकते, सिवाय अँगरेजी जहाज के, दूसरे जहाजों से माल नहीं मँगा सकते ; कोई इस तरह का व्यापार करने का उन्हें अधिकार नहीं, जिससे इंगलैंड के शिल्प-द्रव्य की होड़ लग जाय। वहाँ के बड़े अपराधियों को विचार के लिये इंगलैंड भेजना होगा आदि।

ऐसे-ऐसे कठिन और अपमानजनक नियमों के कारण आग भड़क उठी। वहाँ के लोग बहुत अधिक उत्तेजित हो उठे। इसके विरोध के लिये प्रत्येक गाँव और नगर में सभायें बैठीं। सबके चेहरे पर इंगलैंड के उन नियमों के प्रतिकार के लिये उत्तेजना के भाव झलकते थे। बोस्टन नगर में लोगों ने स्टाम्प बेचनेवालों की कुश की एक मूर्ति बनाकर जलायी।

इस बात के विचार के लिये एक सभा बैठी कि किस उपाय से इंगलैंड के राजा की सनक तथा पार्लियामेन्ट के नियमों को दूर किया जा सकता है। अन्त में यह निश्चय किया गया कि

एक प्रतिनिधि भेजना ही युक्तियुक्त है। उस समय तक स्वतंत्र होने की आकांक्षा किसी भी अमेरिकन के हृदय मे न उठी थी। सबों ने यही तय किया कि प्रतिनिधि बनाकर किसी योग्य आदमी को यदि इंगलैंड भेजा जाय, तो पार्लियामेन्ट के मेम्बरलोग इसके अन्याय के मर्म को समझेंगे और उन नियमों को दूर कर देंगे। इसी निश्चय से लोगों ने महात्मा बेंजामिन फ्रेंकलिन को इंगलैंड के राज-दरबार में भेजा। महात्मा फ्रेंकलिन की जीवन-कथा बड़ी ही विचित्र है। यहाँ संक्षेप से उनके विषय मे दो-चार बातें कहते हैं।

फ्रेंकलिन अत्यन्त ही गरीब के लड़के थे। गरीबी के कारण बचपन मे वे लिख-पढ़ नहीं सके। इसलिये, बचपन ही मे उन्होंने एक प्रेस में बहुत थोड़ी तनख़ाह पर अपनी नौकरी कर ली। जो पैसे मिल जाते, किसी प्रकार कष्ट से कुछ बचा-खुचाकर वे उससे पुस्तकें खरीदते। और, जब कभी उन्हें फुर्सत मिल जाती, तो बड़े ध्यान से लिखते-पढ़ते। इस प्रकार की लगन और चेष्टा से, अपने अध्यवसाय के बल पर थोड़े ही दिनों मे वे राजनीति, विज्ञान आदि विषयों के पंडित हो गये। बिजली की गति का आविष्कार और परिचालन दंड का आविष्कार सबसे पहले उन्होंने ही किया था। आज सारे संसार में उनकी प्रतिभा की उज्ज्वलता झलमला रही है।

फ्रेंकलिन ने इंगलैंड मे जाकर इसका आन्दोलन किया।

अँगरेज औपनिवेशिकों के मन की ताड़ गये और स्टाम्प-कानून को उन्होंने रद्द कर दिया। वह तो रद्द हुआ, मगर उस समय के प्रधान मंत्री लॉर्ड नॉर्थ ने कुछ ही दिनों के बाद फिर चाय आदि कुछ चीजों पर कर लगाया। इस कर को अँगरेजों ने बहुत शीघ्र ही लगा दिया, जिससे यह बोध हो कि अमेरिका पर हमारी क्षमता बेरोक है। फलतः, झगड़े का कारण रह ही गया।

अँगरेजों के इस तरह पेश आने पर अमेरिकावासी बड़े ही दुःखित हुए। उन्होंने इस अत्याचार और अविचार का बदला चुकाने का दृढ़ संकल्प कर लिया। और-और लोगों की तरह जॉर्ज वाशिंगटन भी इङ्गलैंड के ऐसे अन्याय-व्यवहार से बड़े दुःखित हुए। वे इसके लिये यत्नवान हुए। एक पत्र पर देश के प्रसिद्ध लोगों से सही कराकर प्रचार कर दिया कि इङ्गलैंड जब तक कर अदा करने का आदेश उठा नहीं लेता है, तब तक उपनिवेशों के लोग उनमें से एक भी वस्तु को काम में नहीं लायेंगे, जिनपर कर है। इस तरह की प्रतिज्ञा का नतीजा यह निकला कि इंगलैंड के व्यापारियों को घटी होने लगी। पार्लियामेंट की ऐसी व्यवस्था से वे अनिच्छा प्रकट करने लगे। यह देखकर मंत्री-सभा ने एक चाय को छोड़कर सभी चीजों पर से शुल्क उठा लिया। पार्लियामेंट ने विचार किया कि यदि सभी चीजों पर से शुल्क उठा लिया जाता है, तो बड़ी हेठी होनी है। इसलिये, चाय पर से शुल्क नहीं उठाया गया।

इसपर अमेरिकावासियों ने चाय पीने की आदत ही छोड़ दी। इस बात का अनुमान सहज ही कर सकते हो कि अमेरिका-जैसे शीत-प्रधान देश में चाय पीना कितना जरूरी है। फिर भी देश की भलाई के खयाल से लोगों ने चाय की आदत छोड़ दी। चाय लादकर जो जहाज इंगलैंड से आये, बिक्री न होने के कारण लौट गये। वोस्टन नगर के कुछ आदमियों ने एक दिन रेड-इंडियन का वेष बदलकर जहाज पर से लदे हुए चाय के बक्सों को पानी में फेंक दिया। सरकारी लोगों ने उन्हें पकड़ने की भरपूर चेष्टायें कीं, मगर फल एक न निकला। इसपर सारे शहर को सजा देने की चेष्टा की। उन्होंने हुक्म दिया कि वोस्टन बन्दरगाह से अन्य नगरों का व्यापार-कार्य न हो। इंगलैंड से जंगी जहाज मँगाये गये, ताकि यह आज्ञा मानी जाय।

अङ्गरेजों की मुहर्रमी सूरत देख उपनिवेश-वासियों ने निश्चय किया कि लड़ाई होकर ही रहेगी। अपने कर्त्तव्य को निश्चित करने के लिये सन् १७७४ में देश भर के प्रतिनिधियों द्वारा उन्होंने कांग्रेस नाम की एक महासभा कायम की। वहाँ इसपर विचार होने लगा कि ऐसी अवस्था में क्या किया जाय? इधर वोस्टन नगरवासियों को सजा देने के लिये अङ्गरेजी जंगी जहाज लगातार आग उगलता रहा। साथ ही और सात सौ अङ्गरेज सैनिक बोस्टन नगर में दाखिल हुए। अमेरिका के लोगों ने विचार किया कि अङ्गरेजों से लड़े बिना

किसी भी भाँति अत्याचार को रोका नहीं जा सकता। इसलिये वे लोग भी युद्ध के लिये तैयार होने लगे। सन् १७७५ के उन्नीस अप्रैल को अमेरिका में तोपें गरज उठीं। अङ्गरेज और अमेरिकनों से गहरी लड़ाई छिड़ गयी।

अँगरेज और अमेरिकनों में सबसे पहले कंकर्ड नामक स्थान में लड़ाई हुई थी। उसमें जीत अमेरिकनों की हुई थी। स्वाधीनता की उस लड़ाईमें वे कैसे पागल हो गये थे, देश की स्वाधीनता के लिये उनके प्राणों में कैसी ओजना जन्मी थी, इसके उदारण के लिये हम तुम्हें एक कहानी कहते हैं। इस्रेश पुटनस नाम के एक आदमी खेतों में काम कर रहे थे। इतने में उन्हें कंकर्ड के युद्ध की खबर मिली। उसी दम वे एक जोतनेवाले घोड़े पर सवार हो गये और अपने पुत्र से बोले—"बेटा, जाकर अपनी माँ से कह देना, मैं लड़ाई पर जा रहा हूँ। इस समय घर जाकर उससे बिदाई लेने में नाहक ही समय बर्बाद होगा।" इतना कहकर लहमें में वे घोड़े से लड़ाई के मैदान की ओर हवा हो गये।

सबों की सलाह से अमेरिकनों ने जॉर्ज वाशिंगटन को अपना सेनापति बनाया। उन्हें पाँच सौ डॉलर यानी १०६२½ रुपये महीना मिलने लगे। वाशिंगटन ने कहा—"आप लोगों ने मुझपर जिस काम का भार सौंपा है, यह बड़ा ही कठिन काम है। मैं किसी प्रकार के लाभ की आशा से इसे नहीं करने आया हूँ, बल्कि यह देश का काम है। इसलिये अपने गार्हस्थ्य-

जीवन की सुख-शांति पर लात मारकर भी मैं इसे ग्रहण करता हूँ। मैं तनखाह नही लूँगा; मगर सर्वसाधारण के कामों में जो रुपये खर्च होंगे, मैं उसका रत्ती-रत्ती हिसाव रक्खूँगा। मुझे सिर्फ उसी खर्च के रुपये देने से काम चल जायगा।" वाशिंगटन की बात सुनकर उनके महत्व के आगे लोगों ने फिर सिर नवाया।

उस समय वाशिंगटन फिलाडेलफिया की कांग्रेस-सभा मे काम करते थे। युद्ध मे जूझ पड़ने के पहले यदि माँ और स्त्री से बिदा माँगने जाया जाय, तो बहुत समय बेकार जायगा। यह सोचकर पत्र लिखकर ही उन्होंने माता और स्त्री से बिदा माँग ली और बोस्टन की रक्षा के लिये निकल पड़े।

बोस्टन नगर जाने के पहले ही वाशिंगटन को खबर मिली कि बेंगर्स शैल नाम की जगह में अमेरिकन और अङ्गरेजों से एक बार भिड़ंत हो चुकी है। उस युद्ध में अमेरिकन हार तो जरूर गये; लेकिन फिर उन्होंने भी अच्छी वीरता दिखायी। अमेरिकनों की वीरता देखकर अङ्गरेजों ने दाँतों-तले उँगली दबायी। वाशिंगटन की समझ में आया कि अमेरिकनों को यदि नियम से तालीम दी जाय, तो वे अङ्गरेजों को सहज ही हरा सकते हैं।

उन्होंने देखा कि अपनी तरफ की लगभग सारी सेना अशिक्षित है, तिसपर अस्त्र-शस्त्रों की भी कमी है। अङ्गरेजों

की सेना शिक्षित है और युद्ध के सामानों से सजी-सँवारी है। मगर, यहाँ तो अधिकतर लोगों ने हल छोड़कर हथियार पकड़ा है। लड़ाई के साथ ही साथ वाशिंगटन अपनी सेना को तालीम भी देने लगे। सेनाओं में शराबखोरी आदि जितनी भी बुरी आदतें थीं, सबको उन्होंने दूर कर दिया। वाशिंगटन की अनोखी प्रतिभा से थोड़े ही दिनों में सैनिकगण शिक्षित हो उठे।

स्वयं वाशिंगटन भी साधारण सैनिकों की तरह करारी मिहनत करते थे। एक दिन का जिक्र है, वे सैनिकों के कामों की देख-भाल कर रहे थे। इतने में दूर पर नजर आया, एक सूबेदार सैनिकों को एक शहतीर उठाने का हुक्म दे रहे हैं। वे कोशिश करने में जान लड़ाये हैं; पर शहतीर टस से मस नहीं होता। सूबेदार खड़ा-खड़ा देख रहा है कि शहतीर उठ नहीं रहा है; फिर भी साथ नहीं देता। केवल दूर से चिल्ला रहा है—"जोर से, और जोर से, तुमलोग कौड़ी काम के आदमी नहीं।" सूबेदार को ऐसा करते देख वाशिंगटन ने कहा 'आखिर आप सैनिकों का साथ क्यों नहीं दे रहे हैं?' सूबेदार बोला—"आप कहते क्या हैं? शायद आपको मालूम नहीं कि मैं कौन हूँ?"

कौतुक से वाशिंगटन बोले—जी नहीं।

"तभी तो आप वैसा कह रहे थे! मैं सूबेदार हूँ। मैं भला आदमी ठहरा, कुछ जो-सो आदमी तो हूँ नहीं कि ऐसा

छोटा काम करूँ। आपको मुझसे सम्हलकर बातें करनी चाहिये थीं।"

सूबेदार साहब जॉर्ज वाशिंगटन को पहचानते नहीं थे; इसीलिये वैसी बात कहने की उन्हें हिम्मत पड़ी। उन्होंने सूबेदार से फिर एक शब्द भी न कहा। सिपाहियों का साथ देकर शहतीर को उठाकर थोड़ी ही देर में उन्होंने नियत स्थान पर रख दिया और बोले—"सूबेदार साहब, जब कोई काम करने से आप अपने को असमर्थ पावें, तो सेनापति महाशय को खबर देंगे। वे किसी भी काम को करने में अपमान नहीं मानते। मेरा नाम जॉर्ज वाशिंगटन है।" सूबेदार ने मारे शर्म के सिर झुका लिया। मुँह से एक भी शब्द न निकला।

वाशिंगटन ने अपनी शक्ति और बल को तौला। उसके बाद बोस्टन नगर को घेर लिया। जब बहुत दिनों तक घेरे रहने पर भी कोई फल न निकला, तो उन्होंने किया क्या कि नगर के बाहर की दो पहाड़ियों पर रातों-रात उन्होंने दो बुर्ज बनवाये और उन्हीं पर से गोले बरसाने लगे। सवेरे का प्रकाश फैला और उन बुर्जों से अँगरेजी सेनाओं पर गोलों की वर्षा होने लगी। ऐसी असम्भव बात को सम्भव होते देख अँगरेज ताज्जुब में आ गये।

अँगरेज सेनापति ने देखा, यदि हम बुर्ज पर अधिकार नहीं कर लेते हैं, तो खैरियत नहीं; इसलिये वे बुर्ज पर अधिकार जमाने की कोशिशें करने लगे। उसके लिये उन्होंने जान लड़ा

दी ; मगर असफल रहे। फलस्वरूप नगर छोड़कर वे अपनी राह लगे। वाशिंगटन ने बोस्टन नगर पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उनकी विजय-कहानी चारों ओर फैल गयी। कांग्रेस-सभा से उन्हें धन्यवाद और सोने का एक तमगा दिया गया।

बोस्टन जीत लेने पर वाशिंगटन न्यूयॉर्क की ओर चल पड़े। इसलिये कि नयी सेनाओं के साथ अँगरेज उसी ओर लपके थे। वाशिंगटन वहाँ जा धमके ; उसी समय वहाँ के औपनिवेशिकों ने अपने को स्वाधीन कहकर घोषित किया। वे उपनिवेश 'संयुक्त-राज्य' कहलाये। न्यूयॉर्क में सात दिनों तक अमेरिकनों की अँगरेजों से लड़ाई हुई। युद्ध में वाशिंगटन हार गये। अँगरेजों ने उनका पीछा किया। लगातार अमेरिकनों की हार होती चली, जिससे उनके पक्षवालों को बड़ी ही निराशा हुई। परन्तु, वाशिंगटन एक भी दिन, एक घड़ी को भी निराश नहीं हुए। वे ऐसी चतुराई से पीछे हटने लगे कि सेना तितर- बितर न हुई और न शत्रुओं के हाथ में कोई एक तोप ही गयी। सन् १७७७ में ब्रेन्डिवाइन नदी के किनारे अङ्गरेजों से फिर लड़ाई हुई और उसमें भी अमेरिकन ही हारे थे।

बदकिस्मती से कुछ अमेरिकन इंगलैंड की ओर से अपने देश की सब तरह की बुराई करने पर तैयार हो गये थे। यहाँ तक कि कोई-कोई तो वाशिंगटन की हत्या का षड्यंत्र करने में भी नहीं हिचके। याद रक्खो कि सन् १७७६ ई० की

४ थी जुलाई को अमेरिकनों ने अपने स्वाधीन होने की घोषणा की थी और तमाम उपनिवेशों का नाम संयुक्त-राज्य या United States रखा था। उस समय अँगरेजों ने फिला-डेलफिया पर अधिकार कर लिया था।

इधर वाशिंगटन की वीरता की बड़ाई यूरोप के सभी देशो मे फैल गयी। फ्रांस, पोलैंड आदि देशों से अनेक प्रसिद्ध आदमी अपनी गाँठ की रकम से अमेरिका आये और वाशिंगटन की सेना मे भर्ती हुए। उन वीरों मे ला फ़ायेत् नामक फ्रांसीसी वीर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उस समय तक फ्रांस ने अमेरिका को स्वाधीन नहीं माना था। इसलिये, फायेत् ने जब चाहा कि अमेरिका चलकर उसकी ओर से लड़ें, तो वहाँ के राजा ने उन्हें मना किया था। मगर, उन्होंने किसीका कहना न माना और छिपकर अमेरिका आ गये। अब तुम्हें उनके विषय में कुछ सुनाते हैं।

ला फायेत् ऊँचे कुल के वीर थे। जब वे तेरह वर्ष के थे, तो उनके पिता की मृत्यु हुई थी। उसके बाद सेना मे भर्ती होकर थोड़े ही दिनों मे उन्होंने नाम-गाम कर लिया था। अमेरिका के लिये विना तनखाह लिये ही काम करना उन्होंने खुशी-खुशी मंजूर कर लिया। उनके आने से वाशिंगटन बहुत ही आनन्दित और संतुष्ट होकर बोले—

"यह हमारा सौभाग्य है कि हम आप जैसे—एक

फ्रांसीसी वीर की मदद पा रहे हैं। आपसे हम बहुत-कुछ सीख सकेंगे।"

ला फायेत् ने कहा— "मैं सिखाने नहीं, वरन् सीखने को आया हूँ।" इसी समय वाशिंगटन तथा ला फायेत् में जो मिताई हुई, वह जीवन भर बनी ही रही।

फिलेडेलफिया पर अङ्गरेजों ने अधिकार तो किया, पर उसके बाद ही उनपर भाग्य-लक्ष्मी की अकृपा शुरू हुई। अब उनकी हार होनी शुरू हुई। अङ्गरेजों की मदद के लिये राजा ने सेनापति वर्गयेन की अधीनता में कुछ जर्मन-सेना भेजी थी। मगर, अमेरिकनों से उन्हें मुँह की खानी पड़ी और वे कैद कर लिये गये। इसपर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि अब अपनी सेना लेकर हम कभी भी अमेरिकनों से न लड़ेंगे। ऐसा वचन देकर वे सेना के साथ इंगलैंड लौट गये थे।

ला फायेत् के अनुरोध से फ्रांस ने सन् १७७८ में अमेरिकनों को मदद देते हुए अङ्गरेजों से लड़ने के लिये एकाध जंगी जहाज और थोड़ी-सी सेना भेज दी थी। फिलेडेलफिया के अङ्गरेजों पर आफतों का पहाड़-सा टूट पड़ा। वे फिलेडेलफिया छोड़कर न्यूयॉर्क की ओर चल पड़े। अमेरिकनों ने भी उनका पीछा किया। अब तो इंगलैंड के बहुत-से लोग इस बात पर जोर देने लगे कि अमेरिकनों से सन्धि कर ली जाय। पिट् साहब,जो पहले इस बात के अधिक पक्षपाती थे,कि अमेरिकनों

से किसी प्रकार का लड़ाई-बलवा न हो, अब वही सन्धि के कट्टर विरोधी बन गये।

उन्होंने कहा—इस समय अमेरिका से सन्धि का प्रस्ताव किसी भी हालत मे नहीं हो सकता है। अगर ऐसा प्रस्ताव किया जाय, तो इंगलैंड की बड़ी ही हेठी होगी। यूरोप की जिन जातियों ने अमेरिकनों की मदद के लिये इस युद्ध मे हाथ बँटाया है, वे यही सोचेंगी कि हमारे ही भय से अङ्गरेज सुलह करने को तैयार हुए हैं। इसलिये मैं ऐसा काम, जिससे इंगलैंड के गौरव मे बट्टा लगे, कदापि नहीं कर सकता। पार्लियामेंट मे सन्धि के विरुद्ध उन्होंने ऐसी जोशीली भाषा मे भाषण दिया था कि भाषण देते ही देते आप मूर्छित होकर वहीं गिर पड़े थे। इसी मूर्च्छा से उनके अन्तिम दिन भी करीब आ गये। कुछ ही दिनों मे उन्होंने प्राण त्याग दिया। सौभाग्य की बात है कि वे इस बुरी खबर को—अमेरिका इंगलैंड के हाथों से छिन गया—सुनकर नही मरे।

अङ्गरेज और अमेरिकनों से और भी दो वर्षों तक लड़ाई चलती रही थी। हाँ, जमकर ऐसी कोई लड़ाई नहीं हुई। सन् १७८१ मे वाशिंगटन ने न्यूयॉर्क नगर को घेर लिया। लार्ड कॉर्नवालिस नाम के एक प्रसिद्ध व्यक्ति अङ्गरेजी सेना के सेनापति होकर आये थे। यही लॉर्ड कॉर्नवालिस इसके बाद गवर्नर जेनरल होकर भारत आये थे। जिस समय जॉर्ज

वाशिंगटन ने न्यूयॉर्क को घेर लिया, उस समय कॉर्नवालिस वहाँ सात हजार सेना लेकर पड़े हुए थे।

वाशिंगटन ने बड़ी चतुराई से चुपचाप नगर को घेर लिया। उन्होंने सोचा, किसी प्रकार कॉर्नवालिस को कैद कर लेने से अङ्गरेजी सेना को हानि भी होगी, और उनका उत्साह भी जाता रहेगा। और उन्होंने ऐसा ही संकल्प किया।

बड़ी सावधानी और गुप्तरूप से रातों-रात नगर के बाहर उन्होंने कई बुर्ज बनवाये और सवेरा होने तक उन्हें सब प्रकार से सुरक्षित कर लिया। इधर फ्रांसीसी जहाजों ने नगर के सामने ही की ओर लंगर डाला, ताकि समुद्र की तरफ से अङ्गरेज भाग न सकें। पौ फटते न फटते उन बुर्जों से दनादन गोले बरसने लगे। लगभग पन्द्रह दिनों तक कॉर्नवालिस ने पूरी सावधानी और वीरता से नगर को बचाया; परन्तु अन्त में मजबूर होकर अमरिकनों के हाथों अपने को सौंप दिया। दोनों तरफ फ्रांसीसी और अमेरिकन सेना कतार बाँधकर खड़ी हुई और बीच से अस्त्र छोड़कर अङ्गरेजी सेना शहर से बाहर हो गयी।

इस तरह से हार जाने पर भी अङ्गरेजो ने हिम्मत नहीं हारी। भला अमेरिका के समान एक बहुत बड़ा उपनिवेश सहज ही छोड़ देने का है? इसलिये, फिर कार्नटन नामक एक कुशल सेनापति को अङ्गरेजों ने अमेरिका भेजा। कार्नटन बहुत ही बुद्धिमान और चतुर व्यक्ति थे। अमेरिका आकर उन्होंने

देखा, युद्ध मे वहाँ की बड़ी हानि हुई है। इसमे कोई सन्देह नहीं, फिर भी यदि इङ्गलैंड से इसकी शक्ति की तुलना की जाय, तो अमेरिका अब भी विशेष शक्तिमान है। साथ ही इस युद्ध मे भी अपनों से विरोध तथा ऐंग्लो-सेक्सन जाति की शक्ति घटने के अलावे और कुछ लाभ नही। फलतः, किसी जाति के धन और लोगों का नुकसान करके फायदा ही क्या। कार्नटन ने अपना विचार विलायत लिख भेजा। इस बात पर पार्लियामेंट में एक आंदोलन उठ खड़ा हुआ। काफी वाद-विवाद के बाद सभों ने कार्नटन के मत का समर्थन किया। सन् १७८२ की ३० नवम्बर को, अर्थात् स्वाधीनता की लड़ाई शुरू होने के आठ वर्ष बाद, इङ्गलैंड से अमेरिका की सन्धि हो गयी। इङ्गलैंड ने अमेरिका को स्वाधीन मान लिया।

अमेरिका की जयध्वनि शून्य में प्रतिध्वनित हो उठी। जॉर्ज वाशिंगटन का संकल्प पूरा हो गया। अमेरिका वहाँ के औपनिवेशिकों ही का हो गया। अब विजय-लक्ष्मी के विजयमाल्य से शोभित होकर उन्होंने सेना को घर लौटने के लिये बिदा दी। इङ्गलैंड के राजा ने बेकार जानकर संयुक्त राज्य से फौज हटा ली थी। वाशिंगटन आँसू-भरे नेत्रों से उनसे बिदा होकर घर लौटे। आजतक जिनके साथ-साथ बिताते रहे, सुख-दुख और मृत्यु को गले लगाकर देश की स्वाधीनता और जन्मभूमि की रक्षा का व्रत कर रहे थे—उनसे रोकर ही वे बिदा हुए।

सेना से बिदा होकर वाशिंगटन न्यूयॉर्क से पहले एना-

पानिस नगर की ओर चले। उस समय वहाँ महासभा का अधिवेशन हो रहा था। उनपर जिस राह से वे गुज़र रहे थे, उनके स्वागत के लिये, देश के मुक्तिदाता के दर्शन के लिये, दल के दल लोग उमड़ पड़ने लगे। गाँव फूल-पत्ते और झंडों से सजाये गये; गीत और बाजे के स्वर से दिशाएँ गूँज उठीं। महासभा में पहुँचने पर सदस्यों ने भी उनका विराट् स्वागत किया। आजतक सेनापति का जो भार उनपर था, उन्होंने लौटा दिया। उसके बाद उन्होंने वर्नन शैल जाकर अपनी बहुत बड़ी जायदाद तथा खेती-बारी की देख-भाल में ध्यान लगाया।



जॉर्ज वाशिंगटन—प्रथम प्रेसिडेन्ट

अपने घर आकर वाशिंगटन ने फिर गिरस्ती के कामों मे खूब मन लगाया। उन बातों पर वे विशेष ध्यान देने लगे, जिससे आमदनी बढ़े, व्यवसाय-समिति आदि से जिसमें देश की आमदनी का मार्ग सुगम हो। लोग उनसे बहुत-से विषयों की सलाह पूछने आते थे। एक बार किसी समिति ने उनकी सलाह के मुताबिक बहुत धन कमाया था। इसलिये, समिति उन्हें एक लाख से भी अधिक रुपये दे रही थी। वाशिंगटन ने खुद रुपये न लिये, वरन् एक विश्वविद्यालय खोलने के लिये दान कर दिये।

इधर जितनी ही अधिक उन्हें आमदनी होती थी, दान के लिये उनका हाथ भी उतना ही खुला था। इसके लिये तो उनके यत्नों का अन्त नहीं था कि गरीब-दुखी भी कमाकर सुखी बन सकें। अपनी जमींदारी मे उन्होंने खैरात गोले खोल रक्खे थे कि दानों के अभाव मे गरीब भूखों कष्ट न पायें। उन गोलों को वे अनाज से भर देते थे और जब लोगों को अन्न का कष्ट होता, तो वे दरिद्रों में अनाज बाँटते थे। एक बार जोरों का अकाल पड़ा था। उस समय केवल अपने गोलों का अन्न बाँटकर ही वे चुप न रहे, बल्कि बाहर से खरीद कर भी उन्होंने अन्न बाँटा था।

वाशिंगटन के गरीबों पर प्रेम की एक कहानी तुम्हें सुनाते हैं —"एक बार जॉनसन नाम के एक सज्जन स्वास्थ्य सुधारने की गरज से गर्म झरने में नहाने के लिये वर्जिनिया गये थे। उन दिनों वहाँ इतनी भीड़ थी कि उन्हें कोई रहने योग्य अच्छी जगह न मिल सकी। इसलिये, वे एक रोटीवाले के यहाँ ठहरे। वे रोज ही देखा करते कि सैकड़ों हब्शी उस दूकान से रोज रोटियाँ ले जाते हैं। परन्तु, क्या आश्चर्य, कोई एक पैसा भी नहीं देता। एक दिन उन्होंने रोटीवाले से पूछा, क्यों भाई, इस रोजगार में तुम्हें कोई लाभ होता है? इस सवाल से ताज्जुब में आकर दूकानदार ने पूछा—क्यों बाबूजी, आपको इसमें सन्देह क्या है? मैं रोज ही तो बहुत रुपयों की रोटी बेच लिया करता हूँ।

"बेचते तो जरूर हो, पर शायद कुछ उधार लगाते हो।"

"उधार? नहीं तो, मैं एक भी रोटी उधार नहीं बेचता।"

"क्या खूब! रोज ही तो मैं देखता हूँ कि सैकड़ों दुखी तुम्हारी दूकान से रोटियाँ ले जाते हैं; पर कीमत तो कोई नहीं देते।"

"तो उससे हर्ज क्या है? सब रुपये वे एक ही दिन दे देंगे।"

"अच्छा! एक ही दिन दे देंगे? वह दिन शायद इस जीवन में नहीं आने को है। तुम्हारी धारणा क्या है कि

धर्मराज उनके जामिन हैं, जो उस लोक में तुम्हारी कौड़ी-कौड़ी करके चुका देंगे !"

नहीं, बाबूजी, वैसी बात नहीं। सच्ची बात यह है कि वाशिंगटन ने सारा खर्च अपने जिम्मे लेकर इन गरीबों को रोटियाँ देने का आदेश दिया है। वे नहीं चाहते कि लोग उनका नाम जान जायँ, वरना अपने आदमियों-द्वारा वे रोटियाँ बँटवाते।

रुबेन रुजी नाम के किसी आदमी ने एक बार उनसे बीस हजार रुपये कर्ज लिये थे। रुजी समय पर रुपये न चुका सके। इसलिये, वाशिंगटन के कर्मचारी ने नालिश करके उन्हें कैद करा दिया। रुजी ने जेल से अपने को छुड़ा देने के लिये वाशिंगटन के पास एक प्रार्थना-पत्र लिखा। वाशिंगटन को इन बातों की कुछ भी खबर नहीं थी। उन्होंने उसी दम रुजी को छुड़ा देने का प्रबंध कर दिया। और बिना पूछे ऐसा करने के कारण अपने कर्मचारी को कड़ी मीठी सुनायी।

कुछ वर्षों के बाद रुजी की हालत सुधरी। व्यापार करके उन्होंने बहुत-सा धन इकट्ठा किया। उसके बाद वाशिंगटन के जितने रुपये थे लेकर, कर्ज चुकाने के लिये वे उनके पास पहुँचे। उनकी सभी बातें जान चुकने पर वे उनके बोले—"क्यों भाई, तुम तो बहुत दिन पहले ही कर्ज से छुटकारा पा चुके हो ?" रुजी ने बहुत ही करुण होकर कहा—"मैं और मेरा परिवार आपके जिस कर्ज में बँधा है कभी भी उससे

उऋण होने का नहीं। इसलिये, इन रुपयों को लेकर मुझे कर्ज के बोझ से उबारें।" वाशिंगटन ने रुजी से रुपये ले लिये और उनके बाल-बच्चों को दान कर दिये।

परन्तु, अधिक दिनों तक वे इस प्रकार का शांतिपूर्वक जीवन न बिता सके। सन् १७८९ में कांग्रेस-महासभा में यह स्थिर किया गया कि देश के शासन-सम्बन्धी कामों को चलाने के लिये एक सभापति चुने जायँ। वाशिंगटन पर ही सब लोगों ने इस काम का भार सौंपा। यद्यपि वे ऐसी जिम्मेवारी का काम करने को तैयार न थे; परन्तु देश और उनकी माँग को वे ठुकरा न सके। अपने सुख तथा स्वार्थ को विसर्जित कर उन्होंने जन्मभूमि की सेवा का व्रत लिया।

कांग्रेस का अधिवेशन उस बार न्यूयॉर्क में हो रहा था; इसलिये, वर्नन शैल से वे न्यूयॉर्क को चल पड़े। रास्ते में लोगों ने उनका जैसा स्वागत किया था, संसार के किसी दिग्विजयी सम्राट् का वैसा, स्वागत होता है कि नहीं, इसमें सन्देह है। सड़क के दोनों किनारे भीड़ लगी थी। क्या स्त्री-पुरुष, क्या बालक-बालिका, सभी उन्हें देखने को जमा हुए थे। एक बालक अपने पिता के कंधे पर चढ़कर वाशिंगटन को देखने आया था। वह बोला—"बाबूजी, यही वाशिंगटन हैं? ये तो हमलोगों ही की तरह आदमी हैं।"

जिस समय वे ट्रेन्य नगर होकर गुजर रहे थे, उस समय उनका ऐसा स्वागत किया गया, जैसा कभी नहीं हुआ। रास्ते

में एक सिंहद्वार बनाया गया था। उस सिंहद्वार की एक तरफ हाथ में फूलों की माला लिये सादी पोशाक में लड़कियाँ खड़ी थीं; दूसरी ओर फूलों की डाली लिये स्त्रियाँ स्वागत-गान गा रही थीं। ज्योंही वाशिंगटन की सवारी वहाँ पहुँची कि लोगों ने फूलों की झड़ी लगाकर अपने देश के कर्णधार का स्वागत किया। न्यूयार्क में भी सभापति महोदय का जैसा चाहिये वैसा ही स्वागत हुआ था।

चार वर्षों तक अपनी अपूर्व न्यायनिष्ठा, से देश की की हितकर सेवायें करते रहे। उसके बाद उन्होंने छुटकारा चाहा। इसलिये कि प्रत्येक चार वर्ष पर अमेरिका में नये-नये सभापति चुने जाते हैं। लेकिन १७६२ में लोगों ने फिर से उन्हें ही सभापति बनाया। कन्नी काटने की चेष्टायें तो उन्होंने खूब ही की; मगर कोई सुने भी! अन्त में उन्हें फिर से सभापति का दायित्वपूर्ण पद ग्रहण करना ही पड़ा था।

यहाँ तुम्हें उनकी कर्त्तव्य-परायणता और समय-निष्ठा की एक कहानी सुनाते हैं। इन कहानियों से तुम समझ सकोगे कि मनुष्य क्यों और कैसे बड़े होते हैं। वाशिंगटन ने ठीक कर लिया था कि आठ बजे कहीं जायेंगे। आठ बज गये और वे निकल पड़े। अपने अंग-रक्षक सवारों की जरा देर भी बाट न जोही, उनके निकले कुछ देर हुए कि बेतहाशा दौड़ते हुए घुड़सवार लोग उनके पास पहुँचे। उन घुड़सवार सैनिकों के नेता पहले वाशिंगटन के मातहत एक कर्मचारी थे। वाशिंगटन ने

उनसे कहा—"सूबेदार साहब, आपने हमारे साथ इतने दिनों तक काम किया, पर तो भी समय का मूल्य न जान सके।"

अपने कर्त्तव्य के सम्बन्ध में वे कितने न्यायी थे, इसकी भी एक कथा है। कोई जगह खाली थी, जिसके दो उम्मीदवार उनके पास आये। जिनमें से एक तो उनके परम-प्रिय मित्र थे और दूसरे से उनकी जान-पहचान न थी। जो उनके मित्र थे, वे काम के उतने योग्य जानकार नहीं थे, और दूसरे व्यक्ति योग्य थे। सभों का विश्वास था कि जगह उनके मित्र ही को मिलेगी। मगर समय पर लोगों ने क्या देखा कि अपने मित्रके बदले वाशिंगटन ने उस योग्य व्यक्ति को ही बहाल किया।

सन् १७८९ में फ्रांस में राष्ट्र-विप्लव हुआ था। उस सिल-सिले में वाशिंगटन के परम मित्र ला फायेत् देश से निकाल बाहर किये गये थे। वहाँ से जर्मनी चले जाने पर वे कैद कर लिये गये थे। उनके छुटकारे के लिये वाशिंगटन ने प्राण-पन से चेष्टायें की थीं। साथ ही उनके परिवारवालों को २० हजार रुपये का दान दिया था।

दूसरी बार भी जब सभापति पद का निश्चित समय बीत गया, तो तीसरी बार के लिये भी वाशिंगटन ही सभापति चुने गये थे। लेकिन, इस बार उन्होंने मंजूर न किया और आराम से दिन बिताने के लिये वर्ननशैल चले गये। मगर इस बात को कोई समझ नहीं सके कि विधाता उन्हें सदा के लिये शांतिमय गोद में उठा लेने को तैयार हैं।

सन् १७९९ के दिसम्बर का महीना था। और दो-चार दिन अगर बीत जाते, तो एक शताब्दी ही पूरी पड़ जाती। मगर भगवान् की वैसी मर्जी न थी।

उस दिन पानी बरस रहा था। बाहर भीषण दुःसमय था। ठीक ऐसे ही मौके पर वाशिंगटन कहीं बाहर जाने को तैयार हुए। माँ ने जाने से रोका, पर वाशिंगटन ने उनकी मनाही पर ध्यान न दिया। उन्होंने कहा—आज बगीचे में कुछ नया काम हो रहा है, इसलिये मेरा जाना जरूरी है। क्या तुम समझ रही हो कि भींगने से तबीयत खराब हो जायगी।

दोपहर में खाने के वक्त पर लौटे और भींगे कपड़े पहनकर ही खाने को बैठ गये। नतीजा यह हुआ कि सर्दी लग गयी। फिर सर्दी से जोरों का दर्द होना शुरू हुआ। बड़े-बड़े डाक्टर-वैद्य आये। उस समय की चिकित्सा-प्रणाली के मुताबिक लोहू सुखाया गया, लेकिन फल एक न निकला। दर्द दिनों-दिन बढ़ता ही गया। वाशिंगटन ने समझा कि मेरे बचने का अब उपाय नहीं। ऐसा विचार आ जाने से जब डाक्टर लोग दवा पीने के लिये बार-बार तकाजा और जिद्द करने लगे, तो वे बोले—"I feel, I am going. I thank you for your attentions, but I pray you to take no more trouble about me" यानी मैं समझता हूँ कि अब मैं बचने का नहीं, मेरे लिये आपलोगों ने अनेकों कष्ट झेले, धन्यवाद है। मगर, यह अर्ज है कि आप अब हमारे लिये

किसी तरह का कष्ट न उठायें। मृत्यु के समय बिस्तर पर बगल में बैठे हुए एक मित्र से बड़े कष्ट से उन्होंने कहा—"ध्यान रक्खें, तीन दिन के भीतर हमारी देह दफनाई न जाय।" उसके बाद बिना किसी तरह की पीड़ा के, उस महा-पुरुष की अमर आत्मा स्वर्ग चली गयी। उस जमाने में न तो रेल थी न तार; परन्तु बात की बात में महापुरुष वाशिंगटन के देहान्त का संवाद बिजली की तरह देश के कोने-कोने फैल गया।

स्कूल, कॉलेज, गिर्जे, दूकानें सबके सब काले कपड़ों से ढँक गयीं। अमेरिका के क्या छोटे और क्या बड़े, सबों को ऐसा ही मालूम हुआ मानो आज वे पितृहीन हो गये। वाशिंगटन की आज्ञा के अनुसार तीन दिनों के बाद १८ दिसम्बर को उनकी लाश दफनायी गयी।

जब यह खबर फ्रांस पहुँची, तो महावीर नेपोलियन ने अपने नौकर-चाकरों को काले वस्त्र पहनने का हुक्म दिया। इङ्गलैंड के जंगी जहाजों के झंडे झुकाकर उस स्वाधीनता के उपासक श्रेष्ठ महापुरुष के प्रति सम्मान दिखाया गया।

जब तक सूर्य-चन्द्र रहेंगे, जब तक स्वाधीनता के गौरव से अमेरिका गर्वित मस्तक को ऊँचा कर खड़ा रहेगा, तब तक वाशिंगटन का नाम स्मरणीय रहेगा। अमेरिका को स्वाधीनता दिलानेवाले प्रधान पुरोहित वाशिंगटन ही थे। वे ज्ञानी थे, निष्ठावान महापुरुष थे, श्रेष्ठ वीर थे।

अमेरिका के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सभापति

जॉर्ज वाशिंगटन के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका के सभापति होकर जो लोग मशहूर हो गये हैं, उनमें टॉमस जेफरसन, एन्ड्रूज जेकसन, इब्राहम लिंकन, गारफिल्ड आदि का नाम चिर-स्मरणीय है। लेकिन, इस बात को तो मानना ही पड़ेगा कि सर्व-साधारण की प्रीति और श्रद्धा जैसी वाशिंगटन को मिली थी, वैसी प्रीति और श्रद्धा किसी भी दूसरे आदमी के लिये पाना असम्भव है। वाशिंगटन के बाद तीसरे प्रेसिडेंट श्री जेफरसन ने भी बहुत अधिक मात्रा में जनता की श्रद्धा और प्रीति पायी थी।

इन महापुरुषों की जीवनियों को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अँगरेजों की अधीनता से पिंड छुड़ाकर किस प्रकार इतने थोड़े दिनों में अमेरिका ने पृथ्वी में अपना श्रेष्ठ स्थान बना लिया, किस प्रकार से सभी विषयों मे इतनी उन्नति कर ली।

टॉमस जेफरसन का जन्म सन् १७४३ में वर्जिनिया के अन्तर्गत कॉलोंटिसमिले नामक स्थान मे हुआ था। वाशिंगटन ही की तरह बालपन में उनको भी शिक्षा न हो सकी थी। जीवन के पहले दिनों में उन्हें भी अमीन का कष्टकर कार्य करके समय बिताना पड़ा था। मगर, विद्या पढ़ने का उन्हें बड़ा ही

चाव था। दिन-रात जब कभी भी उन्हें थोड़ी-सी फुर्सत मिल जाती, तो उस समय बड़े ध्यान से वे कॉलेज की पाठ्य पुस्तकें पढ़ा करते थे। अपनी ऐसी लगन से वे विलियम्सबर्ग नामक नगर के कॉलेज में जगह पा सके थे। वहाँ उनसे बहुतों की जान-पहचान और मिताई हुई थी। उन दिनों वह कॉलेज आज के हेमर्ड विश्वविद्यालय के समान गिना जाता था।

वहाँ उन्होंने कानून पढ़ा। थोड़े ही दिनों में बहुत सफलता-पूर्वक परीक्षा में पास किया, फिर वकालत करने लगे। परन्तु, कानून की अपेक्षा खेती-बारी से उन्हें अधिक प्रेम था। पिता अपने पीछे काफी जमीन छोड़ गये थे और उन्होंने खुद भी बहुत-सी जमीन खरीदी थी। सन् १७७२ में उन्होंने मार्थास्केल-टन नाम की एक विधवा युवती से शादी की थी। उस विधवा युवती के भी काफी जमीन थी। विवाह के बाद वकालत छोड़कर खेती-बारी की उन्नति में उन्होंने खूब ही ध्यान लगाया था। वे इन्हीं बातों की चिन्ता में डूबे रहते कि किन उपायों से खेती अच्छी तरह चल सकती है; कैसे अच्छे बीज मिल सकते हैं। उन्होंने नये ही ढंग के हल और तरह-तरह के पौधे तथा फसलों का आविष्कार किया था। इस बात की खोज करने का उन्हें विशेष ध्यान था कि युक्तराज्य की धरती से विदेशियों के लाभ के अन्न उपज सकते हैं या नहीं। वाशिंगटन ही की नाईं उनकी भी इच्छा थी कि कृषि में ही शान्तिपूर्वक सारी उम्र बिता देंगे; लेकिन वैसा हो न सका। देश के कामों के लिये

उनकी पुकार हुई। पहले-पहल वे वर्जिनिया की व्यवस्थापिका सभा के मेम्बर चुने गये। आगे चलकर प्रेसिडेंट वाशिंगटन-द्वारा उन्हें सेक्रेटरी ऑव स्टेट की जगह मिली। वाशिंगटन ने जब तीसरी वार सभापति बनने से इनकार कर दिया, तो मैसेचुसेटस के जेफरसन् ने उस पद को पाने की इच्छा की। परन्तु, उस वार रहनेवाले जोन एवासन् चुने गये।

उस समय भी वोटों से ही सभापति चुने जाते थे। जिन्हें सबसे अधिक वोट मिलते थे, वे सभापति और जिन्हें उनसे कम मिलते थे वे, डिपुटी प्रेसिडेंट बनाये जाते थे। जोन एवासन् को सबसे अधिक वोट मिले थे इसलिये वे सभापति बने। दूसरा नम्बर जेफरसन् का था, इस कारण वे चार वर्षों तक डिपुटी प्रेसिडेंट रहे।

जेफरसन् सन् १८०१ मे अमेरिका के सभापति बनाये गये। वाशिंगटन ही की भाँति निश्चित चार वर्ष बीत जाने पर जेफरसन् फिर सभापति चुने गये थे। मगर दूसरी वार उन्होंने मंजूर नही किया।

जेफरसन् बहुत ही सीधे-सादे आदमी थे। किसी तरह की तड़क-भड़क उन्हें तनिक भी पसन्द न थी। जब वे सभापति चुने गये तो अभिषेक के लिये बड़ी धीर गति से वे राजधानी को गये थे।

वे जितने दिनों तक सभापति रहे थे, उतने दिनों तक उन्होंने सादे ढंग से जीवन बिताने की राह बतायी थी। खाना,

पीना, साज-पोशाक और चाल-ढाल में किसी तरह की दिखावट नहीं थी। वे सुविचारक, सूक्ष्मदर्शी और न्यायी थे। उनके विषय की अनेकों कहानियाँ प्रचलित हैं।

एक बार जेफरसन् घोड़े पर सवार होकर बाहर निकले। रास्ते में एक आदमी से उनकी भेंट हुई। वह आदमी जी-जान से उनके विचारों के विरुद्ध थे। बात-चीत के सिलसिले में वे जेफरसन् की निन्दा-शिकायत करने लगे।

ज़ेफरसन् ने हँसकर कहा—"क्यों महोदय, आपसे क्या जेफरसन् से भेंट-मुलाकात भी है?"

"नहीं, भेंट तो नहीं है और न भेंट करने की इच्छा ही है।"

"मगर जिससे आपकी कभी भेंट भी नहीं हुई, उसके विरुद्ध ऐसी बातें कहना क्या उचित है? दूसरे, आप उनसे मिलने की भी इच्छा नहीं रखते, फिर इस तरह की बातें कहना क्या युक्ति-युक्त है?

"मगर मैं यह भी तो नहीं कहना चाहता कि यदि उनसे भेंट करने का मौका मिल जाय, तो मैं उनसे भेंट ही नहीं करूँगा।"

"अच्छा तो, कल आप उनके यहाँ पधारें, मैं उनसे आपका परिचय करा दूँगा।"

"बहुत खूब, मैं आऊँगा।"

दूसरे दिन जब वे सज्जन प्रेसिडेंट के यहाँ पहुँचे, तो आश्चर्य में डूब गये। इसलिये कि कल उन्होंने जिनसे साधा-

रण तौर से बातें की थीं, वे अन्य कोई नहीं, वरन् खुद सभापति महोदय थे। वे सभापति जेफरसन् की साधुता तथा उनके असाधारण व्यक्तित्व पर लट्टू हो गये ; और उसके बाद से वे सभापति जेफरसन् के दिली दोस्तों में से एक रहे थे।

यहाँ तुम्हें उनकी नम्रता की एक कहानी सुनाते हैं। एक दिन जेफरसन् अपने पोते के साथ घोड़े पर सवार होकर घूमने जा रहे थे। रास्ते में एक बूढ़े निग्रो ने उन दोनों को सलाम बजाया। जेफरसन् ने अत्यन्त विनीत होकर प्रति-नमस्कार किया। किन्तु उनके युवक पोते ने उस ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। अपने पोते का अविनीत भाव जेफरसन् को तनिक भी पसन्द न आया। उन्होंने उससे कहा—"क्या तुम्हारा मतलब यही है कि तुमसे एक निग्रो अधिक भला हो ?"

सिर नवाकर पोते ने अपनी गलती कबूल की।

सभापति-पद से फुर्सत लेकर वे गाँव में रहने लगे थे। उस समय देश के श्रेष्ठ लोग उनसे बराबर ही भेंट करने आया करते थे। गाँव को मानों उन्होंने पवित्र तीर्थ-स्थान बना दिया था। इस तरह अतिथियों के आते-जाते रहने से जेफरसन् का खर्च बहुत बढ़ गया था और वे कर्जदार हो गये थे। उस कर्ज को चुकाने के लिये उन्हें अपना पुस्तकालय, जिसे पचास साल में उन्होंने विशाल रूप दिया था, बेच देने पर बाध्य होना पड़ा था। पुस्तकालय को बेचकर जो पैसे मिले थे, उनसे केवल कर्ज से ही छुटकारा मिल सका था। उनके कुछ

प्रेमी मित्रों ने उनकी हालत जानने पर कर्ज चुकाने लायक रुपये जुटा दिये थे। देशवासियों तथा मित्रों की ऐसी सच्ची सहानुभूति देख जेफरसन् मुग्ध हो गये थे। मगर अफ़सोस, इस आनन्द और कृतज्ञता को प्रकट करने के लिये वे अधिक दिनों तक जीवित न रह सके। इस खुशखबरी पर उन्होंने दुःख के साथ कहा था—"मैं पुरानी घड़ी जैसा हूँ, यहाँ का एक पुर्जा बिगड़ गया है, वहाँ का एक पुर्जा टूट गया है। अब यह घड़ी नहीं चल सकती।"

उस समय उनकी जैसी सर्वतोमुखी प्रतिभा बहुत थोड़े ही लोगों की थी। गणित, संगीत, वनस्पति-विज्ञान आदि विषयों पर उनका अपूर्व दखल था। इनके अलावे कई दूसरी भाषाओं का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। शिल्प-विद्या और घुड़सवारी में वे बहुत ही कुशल थे। शिष्टाचार उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। सभों से वे बहुत नम्र व्यवहार किया करते थे।

कुछ ही दिनों की बीमारी से सन् १८२६ की चौथी जुलाई को वे चल बसे। उन्हें वर्जिनिया का विश्वविद्यालय कायम करने का बहुत बड़ा गौरव प्राप्त है। उसके लिये भी उनका नाम सदा स्मरणीय रहेगा।

जेफरसन् का नाम साहित्य-संसार में भी अमर रहेगा। उनकी लिखी पुस्तक का नाम Declaration of Indepeldeuce है। उक्त पुस्तक से अमेरिका की स्वाधीनता की लड़ाई का इतिहास साफ-साफ मालूम होता है।

एन्ड्र् जेक्सन

सभापति जेफरसन् के बाद एन्ड्र् जेक्सन का नाम उल्लेखनीय है। वे आइरिश थे। उनके माता-पिता आयलैंन्ड से आये थे और उन्होंने अमेरिका में उपनिवेश कायम किया था। उनका जन्म १७१७ की पन्द्रहवीं मार्च को हुआ था। यहाँ पर हम एक कहानी कहते हैं, जिससे तुम्हें उनके चमकते भविष्य की झाँकी मिलेगी। एन्ड्र् जेक्सन अमेरिका के सातवें सभापति थे।

एक छोटे-से लड़के को घेरकर कुछ बड़े तथा बलवान बालक खड़े थे। उस छोटे बालक की मुट्ठियाँ कसी हुई थीं, आँखें जल-सी रही थीं। उसने गुस्से मे भरकर कहा—"खबरदार, अगर मेरी चीजें छुयो तो!" उसकी क्रोध-भरी ऊँची आवाज से बड़े लड़के पीछे हट गये। वह बालक कहने लगा—"देखो, अगर तुम हमारी चीजें लेना चाहते हो, तो मैं देने को तैयार हूँ; मगर हमारी आज्ञा पाये बिना कोई भी किसी चीज को नही छू सकता।" उसकी कड़ी बातों से बालकों में से कोई भी फिर आगे न बढ़ा। चीजें उसकी खेलने की चीजें थी न! उसकी इजाजत बगैर कोई उन्हें ले, यह असम्भव था।

एन्ड्रू गरीब माता-पिता के लड़के थे। किसी तरह का आश्रय या सहारा नहीं था। अन्त में कोई चारा न देखकर एन्ड्रू तथा उनके बड़े भाई ने सेना में गार्ड की नौकरी कर ली। कुछ दिनों के बाद दोनों ही भाई अँगरेजों-द्वारा कैद कर लिये गये। लेकिन, कैद की हालत में भी उन्होंने अपनी तेजस्विता नहीं छोड़ी। एक दिन एक अँगरेज सेनापति ने अपने जूते उन दोनों भाइयों को पालिश करने के लिये दिये। एन्ड्रू ने अपनी तथा अपने भाई की ओर से कहा—"महोदय, हमलोग युद्ध में कैद किये गये हैं। हम चाहते हैं कि हमारे साथ वैसा ही व्यवहार हो, जैसा कैदियों के साथ होना चाहिये। आशा है, आप इस बात का खयाल रक्खेंगे।"

बालक की जिद पर अँगरेज सेनापति ने गुस्से से कहा—हठीले लड़के, चुपचाप जूतों में पालिश लगाकर ब्रश से झाड़ दो।

"मैं किसी अँगरेज का नौकर नहीं हूँ।"

सेनापति धीरज न धर सके। घूँसा तानकर वे उसपर लपके। बालक ने हाथ से वार को रोकने की चेष्टा की; पर जोरों की चोट से हाथ टूट गया। उस चोट का दाग मरते दम तक मौजूद था।

इस घटना के कुछ दिन बाद अपनी माता की कोशिशों और प्रयत्न से दोनों भाई कैद से रिहा हो गये थे। छुटकारा पाने के दो ही तीन दिनों के बाद रॉबर्ट्स चेचक के शिकार

एन्ड्रू जेक्सन

सभापति जेफरसन् के बाद एन्ड्रू जेक्सन का नाम उल्लेखनीय है। वे आइरिश थे। उनके माता-पिता आयलैंन्ड से आये थे और उन्होंने अमेरिका में उपनिवेश कायम किया था। उनका जन्म १७१७ की पन्द्रहवीं मार्च को हुआ था। यहाँ पर हम एक कहानी कहते हैं, जिससे तुम्हें उनके चमकते भविष्य की झाँकी मिलेगी। एन्ड्रू जेक्सन अमेरिका के सातवें सभापति थे।

एक छोटे-से लड़के को घेरकर कुछ बड़े तथा बलवान बालक खड़े थे। उस छोटे बालक की मुट्ठियाँ कसी हुई थीं, आँखें जल-सी रही थीं। उसने गुस्से मे भरकर कहा—"खबरदार, अगर मेरी चीजें छुयीं तो!" उसकी क्रोध-भरी ऊँची आवाज से बड़े लड़के पीछे हट गये। वह बालक कहने लगा—"देखो, अगर तुम हमारी चीजें लेना चाहते हो, तो मैं देने को तैयार हूँ; मगर हमारी आज्ञा पाये बिना कोई भी किसी चीज को नहीं छू सकता।" उसकी कड़ी बातों से बालकों में से कोई भी फिर आगे न बढ़ा। चीजें उसकी खेलने की चीजें थी न! उसकी इजाजत बगैर कोई उन्हें ले, यह असम्भव था।

एन्ड्रू गरीब माता-पिता के लड़के थे। किसी तरह का आश्रय या सहारा नहीं था। अन्त में कोई चारा न देखकर एन्ड्रू तथा उनके बड़े भाई ने सेना में गार्ड की नौकरी कर ली। कुछ दिनों के बाद दोनों ही भाई अँगरेजों-द्वारा कैद कर लिये गये। लेकिन, कैद की हालत में भी उन्होंने अपनी तेजस्विता नहीं छोड़ी। एक दिन एक अँगरेज सेनापति ने अपने जूते उन दोनों भाइयों को पालिश करने के लिये दिये। एन्ड्रू ने अपनी तथा अपने भाई की ओर से कहा—"महोदय, हमलोग युद्ध में कैद किये गये हैं। हम चाहते हैं कि हमारे साथ वैसा ही व्यवहार हो, जैसा कैदियों के साथ होना चाहिये। आशा है, आप इस बात का खयाल रक्खेंगे।"

बालक की जिद पर अँगरेज सेनापति ने गुस्से से कहा—हठीले लड़के, चुपचाप जूतों में पालिश लगाकर ब्रश से झाड़ दो।

"मैं किसी अँगरेज का नौकर नहीं हूँ।"

सेनापति धीरज न धर सके। घूँसा तानकर वे उसपर लपके। बालक ने हाथ से वार को रोकने की चेष्टा की; पर जोरों की चोट से हाथ टूट गया। उस चोट का दाग मरते दम तक मौजूद था।

इस घटना के कुछ दिन बाद अपनी माता की कोशिशों और प्रयत्न से दोनों भाई कैद से रिहा हो गये थे। छुटकारा पाने के दो ही तीन दिनों के बाद रॉबर्ट्स चेचक के शिकार

होकर चल बसे। उस समय ब्रिटिश छावनी मे यह बीमारी जोरों से फैली थी। चेचक के कीड़े रॉबर्ट्स के शरीर में वहीं से फैले थे। एन्ड्रू पर भी रोग का हमला हुआ था। परन्तु, बहुत दिनों तक भुगतने के बाद उनका पिंड छूट गया। उनकी माता भी अन्त मे चेचक ही से मरी।

उस समय एन्ड्रू की उम्र कुल सोलह वर्ष की थी। संसार में बेचारा अकेला था, निराश्रय था। तीनों लोक में उसे अपना कहने को कोई न था। परन्तु, जो लोग संसार में कुछ कर जाने को जन्म लेते है, उन्हें कोई भी विपत्ति निराश तथा उत्साहहीन नहीं कर सकती। एन्ड्रू उसी दर्जे के आदमियों में से थे। उन्होंने किसी भी तरह से हिम्मत न हारी। दूर के कोई सम्बन्धी थे, उनके यहाँ उन्होंने शरण ली। वहाँ भिन्न-भिन्न समय में तरह-तरह के काम करते हुए उनके दिन कटे। और, अन्त में उन्होंने कानून पढ़ना शुरू किया।

पचीस वर्ष की आयु मे वे नॉर्थ कालोंनिया के पब्लिक प्रोजिक्यूटर बनाये गये। वहीं से उनका यश चारों ओर फैलने लगा। और, जब उन्तीस वर्ष के हुए, तो टेनिसी प्रदेश के प्रतिनिधि बनाकर महासभा मे भेजे गये।

उन्ही दिनों एक स्त्री से उनका परिचय हुआ था, जिसका नाम था नासडिल। आगे चलकर नासडिल से ही उन्होंने शादी की थी।

स १७६७ से वे एक-एक कर विभिन्न ऊँचे ओहदे

पाते गये । उस समय जेक्सन की कार्य-कुशलता और साधुता का यश चारों ओर फैल चुका था । और, कुछ दिनों के बाद वे मेजर जेनरल होकर सेना की एक टुकड़ी के सेनापति बने। चूँकि किसी लड़ाई की नौबत आती न दिखी, इसलिये थोड़े दिनों के बाद उन्होंने उस काम को छोड़ दिया। तब तक उनकी साधुता की बात तमाम फैल चुकी थी। तुम्हें इस विषय की एक कहानी सुनाते हैं।

एक बार का किस्सा है कि टेनिसी के एक आदमी को कुछ रुपयों की ज़रूरत हुई। उसने बोस्टन नगर के एक बैंक से रुपये लेने की बात पक्की की। उसकी दरखास्त पर टेनिसी के दो प्रसिद्ध आदमियों के दस्तखत थे । बैंक कार्यकर्ताओं ने उस सज्जन से पूछा—क्या आप जेनरल जेक्सन को जानते हैं? यदि आप उन्हें जानते हों, तो क्या दरखास्त पर उनसे दस्तखत करा सकते हैं?

उसने उत्तर दिया—दरखास्त पर तो हमने दो सज्जनों के सही बनवा लिये हैं। धन के हिसाब से वे जेक्सन को भी खरीद ले सकते हैं। फिर उनसे जेक्सन के नाम का मूल्य अधिक क्या हो सकता है?

बैंक के कर्मचारियों ने कहा—इसके कोई मानी नहीं कि बड़े होने ही से उनकी बातों का मूल्य ठीक रहता है। हम तो जानते हैं कि जितना मूल्य जेक्सन की बातों का है; उतना

दूसरों की बातों का नहीं। इसलिये, अगर आप जेनरल जेक्सन से दस्तखत करा सकें, तो आपको रुपये देने में हमें कोई आपत्ति ही नहीं रह जायगी।

मगर, इतने-इतने गुण ही हुए तो क्या, जेक्सन सब तरह से भले न थे। महज छोटी-छोटी बातों पर बेखफा हो उठते थे। एक अदना-सी बात पर भी वे अपना अपमान समझते थे तथा उसके लिये कभी-कभी अनर्थ भी कर बैठते थे। एक-बार चार्ल्स डिकिन्सन नाम के एक सम्भ्रान्त व्यक्ति से उन्होंने टंटा मोल ले लिया। उन्हें जेक्सन ने द्वन्द्व के लिये चुनौती दी और अपनी गोली का शिकार बनाया। खुद भी उसमें बुरी-तरह घायल हुए थे। उसकी पीड़ा और दर्द से मरते दम तक उन्होंने बहुत ही कष्ट पाया था। इस कठोर स्वभाव की वजह से उनके दुश्मन भी बहुत थे। मगर, उनका हृदय फूल की नाईं कोमल भी था। उनके सम्बन्ध मे टॉमस बेनटन् नाम के एक सज्जन ने लिखा है--मैं एक दिन संध्या समय उनके यहाँ जा दाखिल हुआ। बारिश का समय था, टिप्-टिप् बूँदें जारी थीं। ठंढक भी कुछ ज्यादा पड़ रहीथी। मैं संध्या के कुछ पहले उनके यहाँ पहुँचा। देखता क्या हूँ कि वे आग के सामने अकेले बैठे हैं। दोनों घुटनों के पास एक बच्चा और एक भेड़ बैठा है। मुझपर नजर पड़ते ही वे अकचका-से गये और तुरंत नौकर को पुकारकर भेड़ और बच्चे को वहाँ से जाने को कहा। हमारी ओर देखते हुए वे हँसकर बोले—ऐसी

सर्दी और ठंढक में भी भेड़ बाहर चर रही थी ; इसलिये लड़का रो रहा था।"

मुझे हँसी आ गयी। वे क्रोधी जरूर थे ; परन्तु स्त्री और बच्चों पर खफा होते उन्हें किसीने नहीं देखा। उनके विपदों में वह महापुरुष सदा ही सहायता देने को तैयार रहते थे।

यदि सच पूछा जाय, तो जेक सन का चरित्र अजीब ही ढंग का था। वे जिस काम को अच्छा और कर्तव्य समझ लेते थे, उससे उन्हें कोई डिगा ही नहीं सकता था।

सन् १८२४ मे एन्डू के सभापति रहने का निश्चित समय समाप्त हो गया। उन्होंने फिर से उस पद के लिये प्रार्थना की ; परन्तु अपने ही दोष से वे चुने न जा सके।

सन् १८२६ में वे फिर सभापति बनाये गये थे। लेकिन, सभापति होने के पूर्व ही उनकी स्त्री का देहान्त हो चुका था। स्त्री को वे प्राणों से भी बढ़कर मानते थे। उनके मर जाने के बाद जेक्सन अपने गले में हरदम उनकी एक तस्वीर लटकाये रहते थे। उन एकनिष्ठ प्रेमी के हृदय को संसार की कोई भी स्त्री नहीं जीत सकी थी। सभापति हो चुकने पर जब वे White House (सुफेद घर) में रहने को आये, तो घरेलू काम-धंधों के लिये भी कोई औरत नहीं रक्खी जाती थी।

जेक्सन दो बार सभापति बनाये गये थे। जब इस बार की भी अवधि समाप्त हो गयी, तो जीवन के अन्तिम दिनों को शांतिपूर्वक बिताने के लिये वे अपने गाँव, हार्सिनेक चले गये।

वहाँ के लोगों ने उन्हें बड़े आदर से अपनाया। उस समय उनकी अवस्था सत्तर साल की थी। सब दिन से उनकी हार्दिक इच्छा थी कि जीवन के बाकी दिन गाँव मे बिताकर मौत की गोद मे सोयें।

वे और भी आठ वर्षों तक जिन्दे रहे थे। उस महापुरुष का देहान्त सन् १८४५ की आठवीं जून को हुआ था। नौकरों के सिवाय इस दुनिया मे उनके कोई अपना-विराना न था। कारण ही उनकी मृत्यु हो जाने से नौकर-चाकर लोग बड़े ही करुण-स्वर से रोये थे। इतने दिनों के बाद वज्र-जैसे कठिन और फूल-से कोमल हृदयवाले महापुरुष जेक्सन सर्वदा के लिये चल बसे।

अब्राहम लिंकन

अब्राहम लिंकन का जन्म सन् १८०६ की बारहवीं फरवरी को केन्टाकी प्रान्त के एक गरीब के झोपड़े में हुआ था। उनके पिता टॉमस आलसी स्वभाव के थे। किसी भी काम में उनका जी नहीं लगता था। इधर-उधर, इसके घर-उसके घर घूमते-घामते ही उनके दिन जाते थे। उन्हें पता ही नहीं था कि उद्यम और अध्यवसाय आखिर है क्या। इसी प्रकार से उनके छब्बीस वर्ष बीत गये थे ; बाद में उनकी आँखें खुलीं। उन्होंने समझा कि यह जिन्दगी सिर्फ कल्पना में ही नहीं गुजर जाती। इस दुनियाँ में काम करनेवाले को छोड़कर दूसरों के लिये जगह हुई नहीं। अतएव, दाने-दाने का मुहताज होकर अन्न की तलाश में टॉमस केन्टकी के एक शहर में जा पहुँचे। वहाँ जोसेफ हैंक्स नाम के एक जुलाहे से कारखाने का काम सीखने लगे। परन्तु, कुछ सीखने की उम्र तो उनकी बीत चुकी थी, इसलिये कोई महीन काम वे न सीख सके। हाँ, उन्हें एक बहुत बड़ा लाभ यह हुआ कि वे जोसेफ की भतीजी नान्सी के प्रेम में पड़ गये। नान्सी भी टॉमस को प्यार करने लगी थी। इसलिये, समय पर दोनों का विवाह हो गया।

वास्तव मे यह बड़े सौभाग्य की बात थी कि टॉमस-जैसे कच्चे और कामों में अकुशल, साथ ही सहृदय आदमी को

गुणवती, बुद्धिमती, गृहकार्य-कुशल और चतुर स्त्री मिल गयी। विवाह हो जाने पर वे अपने गाँव को लौट आये। बाप-दादे के जमाने की जो जगह थी, वहाँ एक झोपड़ी खड़ी कर ली और स्त्री के साथ दुख-कष्ट से किसी प्रकार दिन बसर करने लगे। उन दिनों जिस घर मे वे रह रहे थे, उनमे न तो दरवाजा था और न खिड़की ही थी।

नान्सी धीरे-धीरे अपनी गिरस्ती और स्वामी की तरक्की के लिये जी जान से लग गयीं। एक दिन उन्होंने अपने पति से कहा—तुम लिखने-पढ़ने मे अपना चित्त क्यों नहीं लगाते हो? शिक्षा और उमर से तो कोई वास्ता नहीं।

यहाँ एक बात बता देना जरूरी है कि नान्सी स्वयं भी वैसी लिखी-पढ़ी नही थीं। जोड़-तोड़कर सिर्फ छापे के अक्षरों को पढ़ लेती थी—बस। उनकी ऐसी भी योग्यता नहीं थी कि चिट्ठी भी लिख लें। एक बात अवश्य थी कि नान्सी दस्तखत कर लेती थी, मगर टॉमस से उतना भी नहीं बनता था।

स्त्री की बातों पर टॉमस ने माथा हिलाकर कहा—अरे, कुछ समझती भी हो? नान्सी माननेवाली तो थी नहीं, उन्होंने कहा—मैं सब समझती हूँ, मैं तुम्हें वहाँ तक तो सिखा ही सकूँगी कि तुम दस्तखत कर सको। अब टॉमस ने एक शब्द भी न कहा और पढ़ने मे चित्त लगाया।

नान्सी बहुत ऊँचे विचार की स्त्री थीं। धर्म पर उनका दृढ़ विश्वास था। उन दिनों जो लोग उस प्रान्त मे रह रहे थे,

उनमें से अधिक आदमी धर्मभीरु थे। अपनी स्त्री के चरित्र के प्रभाव से टॉमस की जवानी का अल्हड़पन दूर हो गया। अब से उनमें मनुष्यता के लक्षण दिखायी दिये।

ऐसे ही माता-पिता के यहाँ अब्राहम लिंकन का जन्म हुआ था। जब वे चार वर्ष के रहे थे, तो माता-पिता के परिश्रम और यत्नों से घर की दशा बहुत कुछ सुधर चली थी। उन लोगों ने उस ऊसर प्रान्त को छोड़ दिया था। एक नदी थी, उसीके किनारे वे अपनी झोंपड़ी बनाकर रहने लगे थे। उसी समय टॉमस ने डेढ़ सौ बीघे जमीन खरीदी थी। उसी जमीन के कुछ हिस्से को जोत-बोकर अपनी घर-गिरस्ती-चलाते थे।

अब्राहम लिंकन को उनके माता-पिता तथा अपने-विराने, सब कोई एब् कहकर ही पुकारा करते थे। जब वे चार ही साल के थे, तभी से उन्हें वीरता के खेलों से प्रेम-सा था। उस मुल्क में खरगोश बहुतायत से पाये जाते थे। एब् को खरगोशों के पीछे-पीछे दौड़ने में बड़ा मजा आता था। घूमना-फिरना, पेड़ों पर चढ़ना, पेड़ों पर से पानी में कूद पड़ना आदि परिश्रम के काम करते रहने से थोड़ी ही उमर में उनके शरीर की सब पेशियाँ काफी मजबूत हो गयी थी।

एक दिन टॉमस ने अपनी स्त्री से कहा—सुनती हो, रिनी एक स्कूल खोल रहा है, उसने पूछा है कि सारा और एब् उसके स्कूल में पढ़ेंगे या नहीं।

"जाने को तो स्कूल जरूर जायँगे, मगर रिनी सिखायगा।

क्या ? वह तो वैसा लिखना-पढ़ना जानता नहीं है ; न तो गणित जानता है, न साहित्य ! हाँ, प्राथमिक शिक्षा हो सकती है।

दोनों स्त्री-पुरुष ने सलाह-मशविरा के बाद फिलहाल अशिक्षित गुरुजी के स्कूल मे ही उन्हें पढ़ाना तय किया।

यहाँ पर फिर तुम्हें इतिहास की बात बतायें। यह तुम्हें मालूम हो चुका है कि अमेरिका का संयुक्त-राज्य कुछ भिन्न-भिन्न प्रान्तों से मिलकर बना। हाँ, तो उन प्रदेशों मे कुछ ऐसे थे, जहाँ दास-प्रथा का बोलबाला था। उन प्रान्तों के गोरे औपनिवेशिक करते क्या थे कि समुद्र के पार से भुला-फुसलाकर काले आदमियों को ले आते थे और अपने यहाँ उनसे गुलामी कराते। कुछ ऐसे भी प्रान्त थे, जहाँ काले गुलाम रखने की सख्त मुमानियत थी। इसलिये, जिन-जिन प्रदेशों में दास रखने का रिवाज था, वे-वे प्रान्त दास-राज्य कहे जाते थे। केन्टकी दास राज्य था। वहाँ टॉमस-जैसे मजदूरी पर जीवन बसर करनेवाले का काम नही चलता था। उनके-जैसे आदमी के लिये तो वही देश सुखकर हो सकता था, जहाँ दास-प्रथा न हो। केन्टकी के लोग भी आशा कर रहे थे कि पास का इंडियाना प्रदेश भी युक्त-राज्य के ऐसे प्रान्तों मे, जहाँ दास-प्रथा न हो, शामिल होता है या नहीं।

सन् १८१६ में इंडियाना दास-रहित प्रान्त के नाम से युक्त-राज्य में मिला लिया गया। वहाँ जाने के लिये टॉमस

तो व्याकुल हो उठे ; मगर केन्टकी को छोड़ देना तो उनके लिये आसान नहीं था। अखिर घर-द्वार हैं, उन्हें कौन खरीदने आता है ? और, उन्हें बगैर बेंचे जाया भी जाय तो कैसे ? कई महीने तो वे इसी पशोपेश में रहे। अचानक अक्तूबर मास में, प्रायः आधा महीना खत्म हो जाने पर, एक अजनबी आदमी टॉमस के यहाँ आये। उन्होंने टॉमस का घर मोल लेना चाहा। दुख से उनकी भी दशा हूबहू टॉमस-जैसी ही थी। गाँठ में नकद रुपये नहीं थे। पिछले साल जो फसल हुई थी, उसके सहारे उन्होंने कुछ शराब बनायी थी। इसलिये, घर-द्वार, जगह-जमीन के बदले टॉमस ने उनसे पचास रुपये नकद और काफी शराब ले ली। घर-द्वार बेंचकर टॉमस इंडियाना जा पहुँचे। उस समय इंडियाना जंगलों से भरा था। बच्चों की मदद लेकर जंगल साफ किया गया। अब यह सुनो कि घर बनना किस तरह शुरू हुआ।

घर बनाना शुरू किया गया था सन् १८१७ के वसन्त में। घर बनानेवालों में से थे खुद टॉमस, उनके आठ साल के पुत्र इब्राहम, उनकी स्त्री और बेटी। कभी-कभी पड़ोसियों में से कोई-कोई मदद दे दिया करते थे। अपनी भुजाओं के बल से टॉमस ने एक बहुत बड़े दरख्त को काट गिराया। इब्राहम कटे वृक्ष की डालों को काट-काटकर घर के लिये खंभे बनाने में लग गये। इब्राहम की जिन्दगी ऐसे ही कठोर परिश्रम से शुरू हुई थी। आठ साल से तीस साल की उम्र

तक कुल्हाड़ी उनकी रोज-रोज की संगिनी थी। सारे परिवार की चेष्टाओं से इस प्रकार ठीक समय पर घर बनकर तैयार हो गया।

घर खड़ा हो गया, तो उनलोगों ने परिश्रम से चौकी आदि जरूरी सरो-सामान भी तैयार कर लिये। लिंकन-परिवार का घर देखकर अन्य-अन्य प्रान्तों से आ-आकर बहुत-से लोगों ने वहाँ उपनिवेश कायम किया। बात की बात में लिंकन-परिवार को नये पड़ोसियों ने घेर लिया। पड़ोसियों मे अधिक तो काला अक्षर भैंस बराबर थे। उनका चरित्र भी तरह-तरह के दोषों से दूषित था। इस कारण ज्यों-ज्यों पड़ोसियों की तादाद बढ़ने लगी, त्यों-त्यों एव् की माता शंकित हो उठने लगीं। उन्हें चिन्ता होने लगी, कहीं इन नये साथियों के साथ पड़कर एव् को भी शराब पीने की बुरी लत न पड़ जाय। माता का इसपर बहुत अधिक ध्यान था कि बेटा चरित्रवान् हो। एव् को वह बराबर चेतावनी दे दिया करती थीं। एक दिन बातों के सिलसिले में एव् को उन्होंने पियक्कड़ों की दुर्दशा की कथा सुनायी और बोलीं—एव्, पहले तो लोग शौकिया शराब पीना शुरू करते हैं। फिर, धीरे-धीरे उसके प्रेमी बनकर पियक्कड़ बन जाते हैं। अगर तुम शराब पियो ही नहीं, तो कभी मतवाला न बनोगे। इसलिये, जीवन मे शराब हर्गिज मत छूना।

सन् १८१८ में एक छूत की बीमारी फैली, जिसने लिंकन-

परिवार की सुख-शांति को मटियामेट कर दिया। रोग महा-मारी ही की नाईं फैला और देखते ही देखते चारों तरफ फैल गया। लोगों ने लाख कोशिशें कीं ; पर रोग फैलने का कोई भी कारण कोई न जान सका। पहले तो उस रोग से टोली की टोली गायें मरने लगीं। उसके कुछ ही दिन बाद बीमारी ने मनुष्यों पर भी अपना रंग जमाया। एक दिन रात को इब्राहम की माता रोग की शिकार हुईं। उनके इलाज में कोई कसर नहीं की गयी ; लेकिन फल एक न निकला।

सन् १८१८ के पाँचवें अक्तूबर को इब्राहम की माता बीमारी की सारी तकलीफों से छुट्टी लेकर उस लोक को चलती हुईं। यह सहज ही सोच सकते हो कि माता के मर जाने पर बालकों को दुनिया कैसी दुख-भरी दिखी होगी ! एब् तो लगभग सभी बातों में माँ की बुद्धि और राय का मुँह जोहा करते थे। उनकी मृत्यु से एब् की बहुतेरी आशाओं पर पानी फिर गया।

थोड़े दिनों के बाद टॉमस ने अपनी दूसरी शादी की। एब् की सौतेली माँ का नाम पहले श्रीमती जोनसन था। इस विवाह के छः साल पहले श्रीमती जोनसन विधवा हुई थीं, यानी इब्राहम की माता के मरने से तीन वर्ष पहले जोनसन साहब का स्वर्गवास हुआ था। टॉमस मिसेज जोनसन को तब से ही जानते थे, जब उनकी शादी भी नहीं हुई थी। टॉमस उनके रूप-गुण पर लट्टू थे। वे चाहते थे कि उनसे विवाह कर

लें। परन्तु, वह कुमारी बंजारे की तरह जगह-जगह चक्कर काटनेवाले टॉमस से शादी करने पर राजी न हुई। जब टॉमस को दूसरी बार विवाह करने की सूझी, तो वे एकान्त में मिसेज जोनसन से मिले। विवाह का प्रस्ताव रखते ही वे राजी हो गयी। टॉमस ने भी शुभकार्य मे देर न लगायी, तुरत व्याह हो गया। अब मिसेज जोनसन, मिसेज लिंकन बनकर टॉमस के साथ उनके नये घर मे आयी।

लड़के अपनी सौतेली माँ को पाकर बहुत ही सुखी हुए। एब् के भाग्य से ही कहो, सौतेली माँ रूप, गुण और ऐश्वर्य में उनकी अपनी माँ से बढ़कर थीं। उन्हें देख पहले-पहल तो संदेह से लड़के पास नहीं फटकते थे; परन्तु सौतेली माँ के मीठे व्यवहार से उनलोगों की शंका और लज्जा दूर हो गयी। विमाता सभी विषयों मे कुशल थी। उन दिनों आस-पास और समाज की तुलना में वे खूब ही ऐश्वर्यवाली थीं। जब वे नये घर में आने लगी थी, तो वर्तन-वासन तथा अन्य असबाबों को ढोने के लिये चार बग्गियों और एक बैलगाड़ी की जरूरत पड़ी थी। अपनी उम्र मे एब् ने इतनी आलमारियाँ, इतनी कुर्सियाँ या चारपाइयाँ कभी आँखों नही देखी थी। सौतेली माँ के साथ ही इतनी-इतनी चीजें भी घर आयी। सौतेली माँ पढ़ी लिखी थी। उनके पिता के घर की भी हालत अच्छी थी, पति के घर की भी। वे सिर्फ लिखना ही नहीं जानती थी, वरन् जैसी चाहिये, वैसी तालीम भी पायी थी।

कुछ ही दिनों में टॉमस के घर की रंगत बदल गयी। पलंग सजाये गये, द्वार और खिड़कियाँ खोली गयीं। कुर्सियाँ, टेबुल, आलमारी और पर्दों की सजावट से लिंकन-कुटीर की सुंदरता में चार चाँद लग गये।

इसके पहले लड़के-लड़कियों के चेहरे से श्री काफूर हो गयी थी। जब सेवा और यत्न मिलने लगा, तो उनके चेहरे फिर गये। बीमार की सूरत, कपड़े फटे-चिटे और जूते भी जवाब दे रहे थे। अब उनके बदले सुन्दर पुशाकों ने उनकी सुन्दरता बढ़ा दी। जब एव् ग्यारह वर्ष के हुए, तो मुहल्ले में क्रॉकोर्त नाम के एक आदमी ने स्कूल खोला। एव् उसी स्कूल मे भर्ती किये गये। नाम लिखाने के बाद से ही एव् गुरुजी की बड़ी श्रद्धा और भक्ति करने लगे। नहीं कहा जा सकता, क्यों तो क्रॉकोर्त भी उन्हें अत्यन्त ही स्नेह-भरी दृष्टि से देखने लगे थे। उनकी धारणा हो गयी थी कि समय पर एव् एक बेजोड़ व्यक्ति होगा।

शिक्षा देने के ढंग में क्रॉकोर्त साहब निपुण थे। बड़ी चतुराई से वे लिखाया-पढ़ाया करते थे। और, एव् की मेधा-शक्ति भी ताज्जुब में डालनेवाली थी। जिस किसी भी विषय को वे पढ़ लेते थे, उसे ही जबानी कह देते थे। पढ़ने की आकांक्षा उनकी इतनी प्रबल हो उठी थी कि पैदल पाँच-छः मील चलकर किताबें जुटाया करते थे। बदकिस्मती से क्रॉकोर्त साहब का स्कूल अधिक दिनों तक न चल सका, कुछ

ही दिनों मे वह टूट गया। यों तो चार साल की उम्र से लेकर सत्रह तक, अर्थात् तेरह वर्षों मे एव् पाँच स्कूलों मे भर्ती हुए। परन्तु, गुरुओं की विद्या खत्म हो जाने पर वे एक वर्ष से अधिक कही नहीं पढ़ सके।

दिन भर उन्हें पिता के खेतों मे मिहनत करनी पड़ती थी। बीच-बीच में दम मारने की जो फुर्सत मिलती, उस समय और रात में ढाई बजे तक एव् किताबें पढ़ने मे लगे रहते। पुस्तक पढ़ने से यहाँ तक प्रेम बढ़ गया था कि कोई यदि कह देता कि फलाँ जगह मे फलाँ पुस्तक है तो एव् , चाहे जैसे भी हो, दस-पन्द्रह कोस से उस किताब को ले आते। उसे पढ़ लेते तथा नियत समय पर पुस्तक लौटा भी देते।

एक दिन अपने किसी मित्र से बातचीत करते हुए उन्हें मालूम हुआ कि 'वाशिंगटन का जीवन चरित' बहुत ही सुन्दर पुस्तक है। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों के बाद अपने एक पड़ोसी से एव् ने वह पुस्तक ली और उसे शुरू से आखीर तक पढ़ डाली। बदकिस्मती से वर्षा के पानी से पुस्तक खराब हो गयी। फिर तो उन्हें मजदूरी करके उस पुस्तक की कीमत चुकानी पड़ी थी।

उन्नीस की आयु मे एव् मिसीसिपी नदी के किनारे-किनारे चलकर न्यू-ऑर्लियेंस गये थे। रास्ते में अफ्रीका के काले लोगों का मुकाबिला करने से उनका सर्वांग घायल हो गया था। उन दिनों वे भिन्न-भिन्न लोगों के पास भिन्न-भिन्न काम किया

करते थे। जब वे जोस्ट्री के यहाँ काम करते थे, तो उनकी इच्छा हो रही थी कि इस काम को छोड़कर कहीं जहाज में नौकरी करके रोटी कमायें। लेकिन, माता-पिता ने इसे किसी भी तरह से मंजूर नहीं किया और उनके मन की मन ही में रह गयी। नतीजा यह हुआ कि जब तक नौकरी नहीं मिली, उन्हें घर पर ही बेकार रहना पड़ा।

सन् १८३० की बारहवीं फरवरी से एब् बालिग माने गये। संयुक्त-राज्य के नियम के मुताबिक इक्कीस की उम्र में वे बालिग होनेवाले थे। बालिग हो जाने पर वे मनमानी कर सकते हैं। अब तक तो वे माता-पिता की आज्ञानुसार चलने को विवश थे।

उधर टॉमस का जी इंडियाना से ऊब-सा उठा था। वह जगह अब उन्हें कतई नहीं सुहाती थी। उन्होंने इंडियाना छोड़-कर इलिनॉय जाने की ठानी। उनके घर-द्वार, अनाज, और-और असबाब आदि सभी चीजें बिक चुकीं। जरूरी सामान गाड़ी पर लद गये। मगर-मुसीबत तो यह थी कि उन्हें विदेश ले जाये, तो कौन? सभी बातों का इन्तजाम ही कौन करे? एब् की क्या, वह अब स्वाधीन है। यदि वह चाहे, तो परिवार के साथ नहीं भी रह सकता है। माता-पिता को अब कहने का अधिकार भी क्या रह गया? टॉमस ने एक दिन उन्हें बुलाकर कहा—"एब्, अब तो तू स्वतंत्र है बेटा, तू चाहे जहाँ कहीं चला जा सकता है। मगर, बेटा, मैं सोचकर ठीक ही

नहीं कर सकता हूँ कि तेरे विना हमारे दिन कैसे कटेंगे ?

करुणा-भरी बोली मे एव् ने कहा—और तुम्हें छोड़कर हमारे दिन ही क्या चलेंगे बाबूजी ?

आखिर एव् ने अपने माता-पिता का साथ दिया। वे उनके साथ-साथ नयी जगह को गये। वहाँ उन्होंने उनकी सब प्रकार की सुख-सुविधा का बन्दोबस्त कर दिया। उनकी कोशिशों से लिंकन-परिवार का घर सुन्दरता और स्वच्छन्दता में एक ही बन गया। इधर के काम समाप्त भी हुए कि फसल बोने के दिन आ धमके। एक ही सप्ताह के अन्दर एव् ने ६० बीघे जमीन अपने पिता के लिये जोत-बो दिये। उस स्थान मे बसने के लिये उन्होंने कठिनाइयाँ कुछ कम नहीं सहीं ; परंतु पीछे पता चला कि वह जगह, स्वास्थ्य के लिये बुरी है। फलतः, वे वहाँ से कोलाकल चले गये। वहाँ अपना घर-द्वार बनाया। वहीं सन् १८५१ की सत्रहवी जनवरी को बूढ़े टॉमस की मृत्यु हो गयी।

एव् को १८३१ मे एक नौकरी मिली। न्यूऑर्लियंस नगर मे एक व्यापारी थे, उनका नाम था ऑटक। उन्होंने न्यूऑर्लियंस नगर मे वेचने को बहुत-सी चीजें जमा की थीं और वे चाहते थे कि माल नौका से वहीं जाकर बेच लिया जाय। ऑफट ने एव् को नाव चलाने के काम पर रखना चाहा। चालीस रुपये माहावारी वेतन पर एव् उस काम पर नियुक्त हो गये।

नाव न्यूऑर्लियँस की ओर खोल दी गयी। रास्ते में अनेकों मुसीबतें झेलनी पड़ीं, और अपनी तीव्र-बुद्धि के जरिये वे अनेक बार विपत्ति के मुँह से निकलते गये। अन्त मे वे न्यूऑर्लियँस पहुँचे। वहाँ उन्होंने अधिक से अधिक मुनाफे पर उन चीजों को बेंचा।

उसी साल से वे ऑफट की दूकान की देख-रेख करने पर नियुक्त हुए। वहाँ काम करते हुए अपनी सज्जनता से उन्होंने लोगों को मुग्ध कर दिया था। उनकी साधुता की एकाध कहानी सुनो।

एक दिन एब् ने एक स्त्री के हाथों कोई चीज बेंची। बेचारी स्त्री दाम देते हुए भूल कर गयी और डेढ़ रुपये अधिक दे दिये। साँझ को जब एब् रोकड़ मिलाने बैठे, तो वह भूल उन्हें मालूम हो गयी। उसी दम उन्होंने दूकान बढ़ायी और रातोंरात उस स्त्री के यहाँ जाकर डेढ़ रुपये लौटा दिये।

एब् की साधुता का यह उदाहरण नगर भर में फैल गया। इसलिये, देखते ही देखते वे सबों के विश्वासपात्र बन गये। दिन भर दूकान में जैसी करारी मिहनत करते, वैसी ही लगन से रात में लिखते-पढ़ते भी थे। न्यूसेलेम में एक स्कूल था। एक भले आदमी, जिनका नाम ग्रेहम था, उस स्कूल के शिक्षक थे। एक दिन दूकान में उनसे एब् की भेंट हुई। एब् बोले—शिक्षक महोदय, मुझे अब तक अङ्गरेजी व्याकरण पढ़ने का कभी मौका नहीं मिला। मैं चाहता हूँ कि पढ़ूँ, आपकी क्या

राय है ? उन्हें देखकर ही ग्रेहम ताड़ गये थे कि युवक ने सिर्फ बनिऔटी करने को ही जन्म नही लिया है।

नगर के कुछ गुण्डों ने एव् से टंटा खड़ा किया था। मगर, एव् की शक्ति, साहस और वीरता के आगे उनकी एक न चली। हारकर उन्हे मेल कर लेना पड़ा था।

न्यूसेलेम नगर मे ऑफट की दूकान मे काम करते हुए एव् ने काफी लाभ उठाया। सबसे पहले तो विश्वव्यापी वाणिज्य के विषय मे उनका ज्ञान बहुत बढ़ा। दूसरे, अङ्गरेजी व्याकरण की जानकारी बढ़ी। साथ ही बहुत-सी नयी-नयी पुस्तकें पढ़कर वे शहर मे एक इज्जतदार आदमी बन गये। जब भी किसी विषय पर विवाद खड़ा होता, तो उन्हें ही उसका फैसला करना पड़ता। चाहे जैसी भी, जिस विषय की भी होड़ क्यों न लगे, उसके विचारक एव् ही बनाये जाते। न्यूसेलम नगर मे बुद्धिमत्ता, ज्ञान-गम्भीरता, नम्रता, दयालुता, वीरता और चरित्र में एव् का मुकाबिला करनेवाला कोई न था।

इसी सिलसिले मे कृष्णस्येन नामक एक अमेरिकन सर्दार ने जोर-शोर से उत्पात मचाना शुरू किया। उसके जुल्मों से तंग आकर संयुक्त-राज्य के सभापति महोदय ने लड़ाई का ढिंढोरा पिटवा दिया। कृष्णस्येन बड़ा ही अत्याचारी था। उसके जुल्मों की कहानी सुनकर एव् का खून खोल उठा। इसी बीच मे इंलिनॉय प्रान्त के शासक ने लोगों से स्वयंसेवक बनने की अपील की। फिर क्या था, एव् ने लोगों को उत्तेजित करके

एक दल कायम किया। स्वयं उस दल के सेनापति बने और कृष्णस्येन से लड़ने को चल पड़े। युद्ध में अपनी अद्भुत वीरता दिखाकर एव् ने काफी नाम कमाया। न्यूसेलेम की सेना के नेता वही बनाये गये थे। इतिहास में उस युद्ध का नाम 'Black Hunter' है।

लड़ाई के बाद उनके जीवन की राह ही बदल गयी। युद्ध से लौटकर वे इसपर विचार करने लगे कि कौन-सा व्यापार किया जाय कि समाज का अधिक कल्याण हो।

कुछ दिनों तक वे पोस्टमास्टर का काम करते रहे। उन दिनों व्यवस्थापिका सभा के मेम्बरों के चुनाव की व्यवस्था हो रही थी। एक दिन किसी मित्र ने उनसे कहा—शहर के कुछ जाने-माने व्यक्ति बहुत शीघ्र ही तुमसे भेंट करने को आयेंगे।

वह क्यों ?

वे तुमसे अनुरोध करने आयेंगे कि न्यूसेलेम की तरफ से तुम व्यवस्थापिका सभा के मेम्बर बनो।

एव् ने हँसकर कहा—इससे हमें लोगों के पास हास्यास्पद बनना पड़ेगा।

क्यों ?

अजी, जिस पद के लिये देश के धनी-मानी और विद्वान् लोग खड़े हुए हैं, वहाँ मेरा खड़ा होना हँसी का कारण नहीं तो और क्या है ?

अन्त में वे मेम्बरी के लिये उम्मीदवार हुए। उनकी तरफ के

लोगों ने इसके लिये अपनी सारी शक्ति लगा दी कि लिंकन चुन लिये जायँ; परन्तु वे चुने न जा सके।

उस समय उनकी दशा बिल्कुल गयी-गुजरी थी। नौकरी के लिये दर-दर की ठोकरें खाकर भी जब कोई फल न हुआ, तो वे फिल्ड नगर मे जोन काल्हन नामक सज्जन के पास जरीब का काम सीखने लगे। जरीब का काम सीख लेने के बाद १८३३ ई० मे वे न्यूसेलेम मे पोस्टमास्टर का काम करने लगे। डाकखाना एक मोदी की दूकान में था। जब लिंकन जरीब के लिये या किसी और काम से बाहर रहते थे, तो उनकी एवज में सब काम मोदी कर दिया करता था। उस समय डाकघर में इतना कम काम रहा करता था कि लिंकन अपनी टोपी में भरकर चिट्ठियाँ बाँट सकते थे।

इलिनॉय प्रान्त मे प्रति दो वर्ष पर व्यवस्थापिका सभा के मेम्बर चुने जाने का नियम था। इसलिये, सन् १८३४ ई० मे ही चुनाव का समय आ गया। लिंकन भी उम्मीदवार खड़े हुए और इस बार सहज ही चुन लिये गये। लेकिन, उनकी हालत इतनी गयी-बीती थी कि उनके पास ऐसे कपड़े भी नहीं थे, जिन्हें पहनकर सभा मे जायँ। अपने किसी मित्र से कुछ रुपये कर्ज लेकर उन्होंने कपड़े-लत्ते बनवा लिये।

सभा का मेम्बर बन जाने पर उन्हें मालूम हुआ कि इन कामों के लिये कानून जानना बहुत ही जरूरी है। बस, उन्होंने कानून पढ़ लिया और वकालत करने को तुल गये। उन दो

वर्षों (१८३४-३५) तक लिंकन ने सभा में ऐसे परिश्रम और सच्चाई से काम किया था कि जब दूसरी बार चुनाव का समय आया, तो मित्रों ने बिला-उज्र फिर उन्हें ही सदस्य बनाया। इस बार लिंकन उनके विरुद्ध लोहा लेने लगे, जो दास-प्रथा का समर्थन करते थे। उस प्रथा के विरुद्ध हलचल डालने से बहुत-से लोग उनके खिलाफ पागल-से हो उठे। सभा में दूसरे दल के लोगों ने भी अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिये अनेक प्रस्ताव पेश किये। निडर होकर बड़े साहस से लिंकन उन प्रस्तावों का खंडन करते गये। लिंकन की हिम्मत देखकर उनके दल के कुछ लोग आकर उनके पास खड़े हो गये। मगर, विरुद्ध में बोलने की हिम्मत किन्हीं को न पड़ी।

अपने दल से लिंकन अलग कर दिये गये; फिर भी लगातार दो वर्षों तक (१८३६-३८) निडर की नाईं वे दासों की ओर से बहस करते रहे। इस कारण वे दासों के परम मित्र समझे जाने लगे।

सन् १८३७ ई० में लिंकन को वकील की डिग्री मिली। उसका फल यह हुआ कि न्यूसेलेम छोड़कर उन्हें स्प्रिंग फिल्ड में जाकर बस जाना पड़ा। वहाँ अपने एक पुराने दोस्त के साथ मिलकर वे व्यवसाय करने लगे।

लिंकन दो-तीन बार व्यवस्थापिका सभा के मेम्बर रह चुके थे। फलतः, उनके बोलने की शक्ति बहुत बढ़ गयी थी। थोड़े ही दिनों में उनकी वकालत खूब चल निकली। स्प्रिंग-

फिल्ड मे वे अच्छे वकील गिने जाने लगे, उनका अच्छा यश फैला।

सन् १८४२ ई० अर्थात् तैंतीस वर्ष की अवस्था मे लिंकन ने मेरी से शादी की। मेरी टॉड साहव, व्यवस्थापिका सभा के मेम्बर, की बेटी थी। मेरी से उनके चार पुत्र हुए थे।

वकालत करते हुए लिंकन ने जैसी बुद्धिमत्ता और पांडित्य का परिचय दिया था कि यदि वे कथाएँ कही जायँ, तो वहुत हैं।

अपनी वूढ़ी सौतेली माँ की याद लिंकन ने एक दिन के लिये भी नहीं भुलायी थी। एक वार एक फौजदारी मामले की जीत हुई। लिंकन को मुव्वकिल से साढ़े वारह सौ रुपये ईनाम मिले। रुपया पाने के दूसरे ही दिन वे उनसे जाकर मिले। उन्हें रुपया दिखाते हुए लिंकन ने कहा—भाई, इस एक मामले मे मुझे जितने रुपये मिले, इतने रुपये तो मैंने सारी जिन्दगी में भी नही कमाये। अगर मुझे और भी साढ़े सात सौ रुपये मिल जाते, तो कुल दो हजार रुपये होते और उससे मैं अपनी माता के लिये कोई जायदाद खरीद देता। तव उन्हें वुढ़ापे मे किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होने पाती।

उन्होंने कहा—यदि आप जरूरत समझें, तो मैं आपको रुपये कर्ज दे सकता हूँ।

तो दें।

लिंकन ने हैंडनोट लिख दिया। उन रुपयों से उन्होंने

अपनी सौतेली माँ के लिये अच्छी-सी जायदाद खरीद दी। इतना उज्ज्वल और महन् था उनका चरित्र।

सन् १८४७ ई० में इब्राहम लिंकन संयुक्त-राज्य की प्रतिनिधि-सभा के सदस्य बनाये गये। उन दिनों दास-प्रथा के लिये बड़ा भारी आन्दोलन चल रहा था। जो लोग दास-प्रथा के पक्ष में थे, वे ऐसे प्रबल हो उठे थे कि अपने स्वार्थ को बचाने के लिये युक्त-राज्य के सभापति महोदय को मेक्सिको के लोगों से लोहा भी लेना पड़ा था। ऐसे ही दुर्दिन में लिंकन प्रतिनिधि-सभा के सदस्य बनाये गये थे। साथ ही साथ ऐसी भी चेष्टा चल रही थी कि टेक्सस प्रान्त दास-राज्य के नाम से संयुक्त-प्रदेश में शामिल कर लिया जाय। लिंकन इसके विरोध में सीना तानकर खड़े हुए और निडर की नाईं बोले—"Slavery is founded on both injustice and bad policy !"—दासता की नींव अन्याय और अनीति पर खड़ी होती है।

एक तरफ दास-प्रथा की नींव हिला देने को लिंकन और उनके मित्रगण जिस प्रकार जी-जान से लगे हुए थे, उसी प्रकार दास-प्रथा के समर्थक लोग भी अपना स्वार्थ बचाने में भिड़े हुए थे। केनसस में दास-प्रथा कानून से जायज थी, फिर भी वहाँ के लोग उसके पूरे विरोधी थे। बछड़े की नाईं चुपचाप उस नियम को मान लेने पर वे राजी नहीं थे। इस कारण उन लोगों को दबाने के लिये बहुत से गुंडे मुकर्रर किये गये थे।

जो लोग दासों की भलाई चाहनेवाले थे, वे मौका पाकर उनको भी मौत के घाट उतारने लगे। फलतः, केनसस मे भीषण अराजकता फैल गयी।

लिंकन अपने कर्तव्य और सत्य से डिगनेवाले नही थे। देश से दास-प्रथा की जड़ उखाड़ देने की चेष्टा मे उनके चरित्र की दृढ़ता और सत्यनिष्ठा भली-भाँति सावित हो चुकी है। धीरे-धीरे महापुरुष लिंकन पर देशवासियों का प्रेम बहुत ही बढ़ गया था।

सन् १८६० मे युक्त-राज्य के सभापति के चुनाव मे अमेरिका मे रहनेवाले पच्चीस हजार अँगरेज शिकागो आये हुए थे। सभा मे लिंकन का नाम पेश होते ही चारों ओर आनन्द की चुहल-सी पड़ गयी। सभा में दास-समुदाय के लोग भी थे। उन्होंने विना किसी हिचक के लिंकन को सभापति वनाने की राय दी। लिंकन सभापति चुन लिये गये। विशाल मंडप के मंच से किसीने केवल 'सभापति लिंकन' कहा और लाखों की आनन्दध्वनि से अकाश उतर आया! लिंकन उस समय स्प्रिंगफिल्ड मे थे। तार-द्वारा उन्हें खबर दी गयी। फिर तो आनन्द की सीमा न रही। परन्तु, उनके विरोधियों को जब यह खबर मिली कि लिंकन सभापति बनाये गये, तो वे पागल हो उंठे। चारों ओर वे धमकियाँ देते फिरने लगे कि लिंकन की हत्या कर दी जायगी। सभी ओर से षड्यंत्र और तरह-तरह की गुप्त बातें सुनने में आने लगीं। यही कारण था कि

जब वे माँ से बिदा माँगने गये, तो माँ उनका कंधा पकड़कर जोरों से रो पड़ीं। उनका विश्वास पक्का हो गया कि हम अब फिर से पुत्र का मुँह न देख पायेंगी। और, ऐसा संदेह केवल सौतेली-माँ को ही हुआ था, सो बात नहीं, जितने भी हित-मित्र उनके थे, सबको इसका भय-सा हो गया था।

स्प्रिंगफिल्ड से बिदा होते समय वहाँ के बाबुओं से करुणा भरे स्वर में उन्होंने कहा था—आप लोगों से बिदा होते हुए मेरे प्राणों को कैसी पीड़ा हो रही है, इसे भगवान् ही जानते हैं। आप ही लोगों के बीच मैं मनुष्य बना, हमारे पुत्रों का जन्म यहीं हुआ, उनमें से एक यहीं कब्र मे सो रहा है। आज मुझपर बहुत बड़े कर्तव्य का भार पड़ा है। मुझे आशीर्वाद दें कि मैं इस जिम्मेदारी को धीरता और स्थिरता से निबाह सकूँ। मित्रो, जाने के समय आपसे हमारी यही विनती है कि मैं आपकी दया पा सकूँ। जब तक ईश्वर की दया मुझपर नहीं होती, मैं फर्ज अदा न कर सकूँगा।

उन्होंने ईश्वर से ऐसे ही शब्दों में विनती की और सबसे बड़े पद पर सुशोभित होने को चल पड़े। जब उनका अभिषेक हो रहा था, तब दास-प्रथा के समर्थकों से उन्होंने कहा था—भाइयो, यह आपकी मर्जी पर है; चाहे युद्ध करें, चाहे न करें। हम आप पर हमला न करेंगे। आप यदि हम पर निशाना न लगायें, तो हम हथियार नहीं धर सकते। मैं शपथ लेता हूँ कि आप हमारे शत्रु नहीं, मित्र हैं।

इससे अधिक मैं कह क्या सकता हूँ? मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस झगड़े को दूर कर दें। मगर, जब ईश्वर की इच्छा ही आग जलाने की होती है, तो उसे कौनरोक सकता है।

लिंकन की बातों से विरोधियों के कानों जूँ भी न रेंगा। सन् १८६१ के १२ अप्रैल को उन्होंने बगावत का झंडा फहराया और सन्यार किले पर धावा बोल दिया। बारह हजार सैनिक किले पर गोलों की वर्षा करने लगे। इसके अलावे और भी बीस हजार सेना मैदान मे थी, जो युद्ध के लक्षणों के सुराग मे थी। किले में रक्षक थे एन्डरसन। दो घण्टे तक तो उन्होंने प्रतिकार की कोई कोशिश न की। इतने पर भी जब दुश्मन बाज नहीं आये, तो दोनों दल मे घनघोर भिड़ंत हो गयी। दुश्मन लड़ाई में जीत गये और किले पर उनका कब्जा हो गया। जब प्रजा ने सुना कि किला हाथ से निकल गया, तो हितैषी प्रजागण जी-जान से बागियों को दबाने मे लग गये। लगातार चौबीस वर्षों तक महायुद्ध होता रहा और इन चौबीस वर्षों के इतिहास से लिंकन काजीवन-चरित एक-सा जड़ा हुआ है।

युद्ध के समय लिंकन की महत्ता जनसाधारण के सामने और भी स्पष्ट हो उठी थी। युक्त-राज्य की सेना लगातार मोर्चे ले रही थी और बलवाइयों को हरा रही थी। हार खाये हुए बागियों के लिये जब कोई चारा ही नहीं रह गया, तो वे

इस ओर के कैदी सैनिकों को कठोर-से कठोर कष्ट देने लगे। उनके जुल्मों से बहुत-से लोग भूखों मरने लगे। कितनों के घाव मरहम-पट्टी के बिना सड़ जाने लगे। कितने तो अंधकार से लदे हुए दुर्गंध कमरे में बन्द रहने से पागल-से हो गये। यह बात फैल गयी कि बलवायी लोग इस तरफ के कैदियों से बुरा व्यवहार करते हैं। सुनकर बड़ा भारी हल्ला पड़ गया।

लोगों ने यही स्थिर कर लिया कि बागी लोग इस ओर की सेना से जिस तरह का सलूक करते हैं, उनके कैदियों से भी उसी प्रकार पेश आकर इसका बदला चुकाया जाय। और, लिंकन ने भी उनसे बदला लिया। देखो, उनके और इनके बदला लेने में कितना फर्क था। फ्रेड्रिक नगर के किसी घर मे बहुत-से घायल विद्रोही पड़े थे। लिंकन उन घायलों को देखने गये। कुछ देर तक तो चुपचाप उनकी हालत देखते रहे, फिर बोले—आप हमसे हाथ मिलायें: तो हम बहुत ही संतुष्ट हों। मेरा तो खयाल है कि आप सबों में बहुत-से लोग तो विवश होकर युद्ध में शामिल हुए हैं। आपसे हमें किसी तरह की चिढ़ या मलाल नहीं।

सभापति की ऐसी बातें सुनकर बागी लोग कुछ काल तो अवाक् रह गये। उसके बाद जिनमें थोड़ी भी शक्ति रही थी, उन्होंने उनसे हाथ मिलाया।

लिंकन के महत्वपूर्ण व्यवहार की ऐसी सैकड़ों कहानियाँ सुनायी जा सकती हैं: पर यहाँ न तो वैसा स्थान ही है और न

समय ही। उनकी अनोखी दया से जितनों के प्राण बचे थे कि कहा नहीं जा सकता। ऐसे महान् हृदय के आगे सबों को सिर झुकाना पड़ता है। इस तरह उस भीषण युद्ध का अन्त हुआ था।



स्वाधीनता की घोषणा

इब्राहम लिंकन ने सन् १८६३ की पहली जनवरी को युक्त-प्रान्त के सभी दासों को स्वतंत्रता दे दी थी। और सन् १८६४ मे फिर सभापति भी बनाये गये थे। इस बार सभापति होने के समय उन्होंने कहा था—"I think I shall hardly live out this term of the Presidency, the burden is so great" मैं नहीं समझ सकता कि इस बार मैं सभापति के कर्तव्य की जिम्मेदारी को स्वस्थ रहकर निवाह सकूँगा। उस समय तक वे काफी तन्दुरुस्त थे। शरीर पर बुढ़ापा का कोई लक्षण ही नही था।

अपने अथक परिश्रम और तप के सहारे जातीय-जीवन के

सर्वस्व लिंकन ने देश में शांति कायम की। बलवाइयों के नेता ली साहब ने शरण माँगी। लिंकन की मनोकामना पूरी हुई। संयुक्त-राज्य में शांति की पताका फहराने लगी। चारों ओर शुहरत पड़ गयी, मारे आनन्द के शोर मचाते हुए लोग इस समाचार को तमाम फैलाने लगे। हँसी, गान और आमोद-प्रमोद से सड़कें गुलजार हो उठीं। सभी मंदिरों में ईश्वर की प्रार्थना होने लगी।

इसी आनन्द में एक शोकपूर्ण घटना घटी। सन् १८६५ के १४ अप्रैल को लिंकन थियेटर देखने को गये हुए थे। वहाँ किसी दुश्मन ने उनकी हत्या कर दी। उनके मारे जाने की खबर से देश भर में हाहाकार मच गया। अपनी शक्ति और सामर्थ्य का उन्होंने किसी दिन भी दुरुपयोग नहीं किया था। दया और दान को छोड़कर मनुष्यों से बुरा व्यवहार करना तो वे जानते ही नहीं थे।

इब्राहम लिंकन के बाद जो-जो युक्त-राज्य के सभापति बने, उनमें जेम्स इब्राहम गायफिल्ड का भी नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने भी अपनी गरीबी से लड़ाई की थी और अपनी प्रतिभा के बल से वे सभापति बने थे।

गायफिल्ड जिन्दगी भर न्याय और सत्य के ही मार्ग पर चलते रहे थे। पक्षपात और कृपा दिखाना, ये दो बातें तो उनके इतिहास में लिखी ही नहीं गयी थीं। उन्होंने जो मंत्री-मंडल कायम किया था, उसमें कुशल काम करनेवालों को ही रक्खा

था। संयुक्त-राज्य की राजधानी वाशिंगटन नगर में ही वे रहा करते थे। परन्तु, विश्राम करने की इच्छा से उन्होंने कुछ दिनों की छुट्टी ली थी और अपनी बीमार स्त्री तथा पुत्री के पास रेल से लम्बांक नगर को जाने की ठानी थी। वे स्टेशन पहुँचे और विश्रामागार को जा ही रहे थे कि विटो नाम के एक हत्यारे ने पिस्तौल से उनपर लगातार दो गोलियाँ चलायीं। वे गिर गये। सभापति होने के बाद वे चार ही महीने तक जीवित रह पाये थे। विटो राजवंश के एक आदमी का, जिनका नाम क्लॉकिंग था, शागिर्द था। क्लॉकिंग शुरू से ही गायफिल्ड के विरोधी रहे थे। गोली लगने के बाद भी वे सत्रह दिनों तक जिन्दे थे। उनका जन्म एक साधारण किसान के यहाँ हुआ था। अपने ही उद्यम से उन्होंने सभापति का प्रतिष्ठित पद पाया था।



उड्रो विल्सन

आजकल अमेरिका पृथ्वी का एक श्रेष्ठ राष्ट्र है, स्वाधीनता का क्षेत्र है। जनसंख्या, नागरिक शोभा, आविष्कारों तथा धन और मान मे आज वह बे-जोड़ है। सन् १९१४ ई० के यूरोपीय महायुद्ध मे यदि अमेरिका इंगलैंड और फ्राँस की मदद नहीं करता, तो नही कहा जा सकता है कि लड़ाई का नतीजा क्या निकलता। उन दिनों उड्रो विल्सन महोदय अमेरिका के सभापति थे।

बीसवीं सदी का युक्तराष्ट्र

बीसवीं सदी में यूरोप में जो महायुद्ध छिड़ा, उसमे पहले तो संयुक्तराष्ट्र ने हाथ नहीं बँटाया। इसलिये कि वह लड़ाई यूरोप की शक्तियों के स्वार्थों के लिये ठनी थी। उससे अमेरिका का कोई विशेष वास्ता नहीं था। जब से संयुक्त-राज्य को स्वाधीनता मिल गयी थी, तभी से वह यूरोप से उदास रहने लगा था। युक्त-राज्य के लोग अँगरेज ही थे सही, फिर भी उस समय वे अँगरेजों की लड़ाइयों में साथ नहीं देते थे। उनका कहना था कि अमेरिका स्वाधीन देश है, उसका अपना और यूरोप का स्वार्थ अलग-अलग है। एक बात यह भी थी कि यूरोप वहाँ से छः हजार मील दूर है। इसलिये, अमेरिकावालों के लिये यूरोप में युद्ध करना आसान काम न था। सन् १८२१ ई० में मॉनेरो नामक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ने युक्तराष्ट्र की ओर से ऐलान कर दिया था कि यूरोप के लड़ाई-बलवे से अमेरिका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रक्खेगा। हाँ, अगर कोई अपना प्रभाव या अधिकार बढ़ाने के लिये खुद अमेरिका पर चढ़ आये, तो उस हालत में अमेरिका अवश्य ही मैदान में उतरेगा। उसी समय से संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और-और राष्ट्रों का प्रधान माना जाता है।

मगर, युद्ध के समय कई कारणों से अमेरिका को अपनी पुरानी नीति छोड़ देनी पड़ी थी। पहला तो यह कि युद्ध मे साथ देने और न देने के विषय मे वहाँ दो दल हो गये थे। पहला दल इस बात का समर्थन करता था कि अमेरिका मित्र-शक्तियों को मदद देकर जर्मनी को युद्ध मे हराये : और दूसरे दल के लोगों की इच्छा थी कि हम पहले से जैसे चुप बैठे हैं, वैसे ही रह जायँ। दूसरे दल के लोगों मे बहुत-से जर्मन थे। अमेरिका में सबसे पहले अङ्गरेज आ बसे थे, फिर होते-हवाते सब लोगों के लिये अमेरिका का द्वार खुल गया था। दूसरे-दूसरे देशों के भी साहसी लोग अपने भाग्य की तलाश में वहाँ आते थे। पाँच वर्षों तक वहाँ रहकर जो भी आदमी वहाँ का बाशिन्दा बन जाना चाहे, वह बन सकता था। इस तरह वहाँ अनेक जर्मन और आइरिश लोग भी बस गये थे। अब तुम सहज ही समझ सकते हो कि जर्मनी इस बात को कभी स्वीकार कर ही नहीं सकता कि अमेरिका जर्मनी के विरुद्ध युद्ध मे साथ दे। आइरिश लोग भी यह नही चाहते थे कि अमेरिका अङ्गरेजों का मददगार हो। इसका भी एक दूसरा ही कारण था। इंगलैंड शुरू से ही आयलैंण्ड पर भयानक-अत्याचार करता आया था। बीसवी सदी के आरंभ में वहाँ के लोगों ने आजादी के लिये भरसक कोशिशे की थीं। उन्होंने स्थिर कर लिया था कि अङ्गरेज जब महायुद्ध मे व्यस्त रहेंगे, तो उसी मौके पर हम स्वाधीन हो जायेंगे। अमेरिका के आइरिशों

ने सोचा, यदि अमेरिका इंगलैंड को मदद देगा, तो अङ्गरेजों की शक्ति बिलकुल ही नहीं घटेगी। नतीजा यह होगा कि आयलैंड के मन की मन ही रह जायगी। इसलिये, वे ऐसी चेष्टायें कर रहे थे कि अमेरिका युद्ध में हाथ ही नहीं बँटाये। और, युद्ध के लिये उसकानेवाले दल में पोल, रूसी, वोहेमियन और श्लाव लोग थे। इसी मतभेद की वजह से युक्तराज्य युद्ध में हाथ नहीं बँटा सका था। जब यूरोप के प्रायः सभी देश लड़ाई के लिये लाखों-लाख रुपये लगा रहे थे, अमेरिका उस समय शान्ति से पड़ा था और अपनी चीजें बेच-बेचकर लाभ उठा रहा था।

युक्तराज्य के सभापति उस समय रुजवेल्ट थे। उन्होंने कहा—"जर्मनी केवल अपना राज्य बढ़ाने के लिये ही युद्ध कर रहा है। उसकी इच्छा यह है कि सारी दुनिया उसीकी हो जाय। यदि उसका साम्राज्य बढ़ जाय, तो प्रजातंत्र राज्यों पर तो विपदों का पहाड़ ही टूट पड़े। इसलिये, यदि जर्मनी की जीत हो, तो अमेरिका के गणतंत्र की भी स्वाधीनता जाती रहेगी। रुजवेल्ट के ऐसा कहने से युक्तराज्य के लोगों ने युद्ध में साथ देने की राय दी। उस समय जर्मन लोग बेल्जियम का सत्यानाश करने में जैसी बेरहमी से लगे थे कि वास्तव में ही अमेरिकावाले विचलित हो पड़े। उसके बाद मद में चूर होकर जब जर्मनी ने युक्तराज्य के व्यापार पर भी रोक लगा दी, तब तो अमेरिका के क्रोध का ठिकाना ही न रहा। और,

जब जर्मनों ने लूसेटेनिया नामक जहाज को डुबो दिया, तो युक्तराज्य की सेना खुल्लम-खुल्ला (१६१७ में) महायुद्ध में कूद पड़ी।

पहले पहल तो अमेरिका को युद्ध जारी करने में बड़ी-बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ा। युक्तराष्ट्र के कुल एक ही लाख सेना थी। परन्तु, थोड़े ही दिनों मे वहाँ की जनता काफी संख्या मे सेना मे भर्ती होने लगी। जब वे लोग फौजी तालीम पाकर यूरोप के मैदानेजंग, में उतरे, तो जर्मनी पर विपदाओं का सागर ही उमड़ पड़ा। उनकी सहायता पाकर तो मित्र-शक्ति जर्मनों को और भी हटा देने लगी। जर्मनीवालों ने देखा, अब हार होकर ही रहेगी। अतएव, वे अमेरिकनों ही की शरण मे आये कि अच्छी शर्तों पर सुलह हो जाय। उन दिनों युक्तराष्ट्र के सभापति थे उड्रो विल्सन। वे महान् हृदय के आदमी थे। उन्होंने विचारा, इस महायज्ञ की अग्नि मे हजारों आदमी के जीवनो की रोज आहुति दी जाती है। इस कारण जितना ही शीघ्र इसका अन्त हो, उतना ही अच्छा। और-और शक्तियों से उन्होंने कहा—अब से ऐसा प्रबन्ध किया जाना चाहिये कि संसार मे कभी महायुद्ध हो ही नहीं।

विल्सन उस समय पृथ्वी के श्रेष्ठ और शक्तिशाली राष्ट्र के अधिनायक थे। और भी एक बात यह थी कि वे अपने देश का कोई स्वार्थ नही साधना चाहते थे। इसलिये, उनकी बात किसीने

भी नहीं टाली। सुलह के समय विचारक बनकर उन्होंने ही मेल-मिलाप कर दिया।

उड्रो विल्सन, जिनकी चेष्टा से युद्ध का अन्त हुआ, की जीवन-कथा बड़ी ही विचित्र है। शुरू-शुरू वे खूब ही साधारण आदमी रहे थे। उन्होंने अपनी लगन और परिश्रम से विद्या हासिल की थी; फिर शिक्षक का पद पाया था। प्रिन्सटन विश्व-विद्यालय में तो वे इतना अधिक प्रभावशाली हो गये थे कि वहाँ के सभापति तक बनाये गये थे। उस समय उन्होंने ऐतिहासिक तथा राजनैतिक पुस्तकें लिखी थीं। हमारे यहाँ भी उनकी लिखी हुई कुछ किताबें बी० ए०, एम० ए० में पढ़ायी जाती हैं। सन् १९११ में वे न्यूजर्सी स्टेट के शासक हो गये। शिक्षा-विभाग ही की नाईं राजनैतिक क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया था, जिससे लोग मुग्ध हो गये थे। इसका फल यह हुआ कि अगले साल वे सारे संयुक्तराज्य के सभापति चुने गये। १९१५ के नवम्बर में उन्होंने मिसेज एन० गाल्ट से विवाह कर लिया। एक वर्ष के बाद (१९१६) वे फिर सभापति चुने गये। तुम्हें ऊपर कह चुके हैं कि वार्सेलिज की सन्धि के वे ही प्रधान कार्य-कर्ता थे। लीग ऑव नेशन्स (राष्ट्र-संघ) कायम करने का प्रस्ताव उन्होंने ही किया था। इससे उनका तात्पर्य यह था कि युद्ध दुनियाँ से सदा के लिये उठ जाय। उनके प्रस्ताव पर दूसरे-दूसरे देश तो राजी हो गये, मगर उनके संयुक्त-राज्य ने ही इनकार कर दिया। इससे विल्सन को उदास हो

जाना पड़ा। लाख कोशिशें की ; पर संयुक्त राज्य को राजी न कर सके। १९१९ के अक्तूबर मे वे बीमार पड़े। सन्धि-पत्र पर युक्तप्रान्त की सिनेट-सभा ने अपनी असम्मति प्रकट की। हाल ही मे विल्सन का स्वर्गवास हो गया। अमेरिका ने लीग ऑव नेशन्स (राष्ट्र-संघ) में साथ नहीं दिया।

लड़ाई के बाद अमेरिका का धन-बल और रण-शक्ति बेहद बढ़ गयी है। आजकल अमेरिका-जैसा धनी देश संसार में दूसरा नहीं है। युद्ध के बाद वहाँ के करोड़पतियों की संख्या बीस हजार बढ़ गयी है। संसार मे जितना हीरा है, उसका आधा अमेरिका के तहखाने में धरा है। संसार मे जितना सोना है, उसके तीन चौथाई का मालिक अमेरिका है। पेनसोलविया नाम के राष्ट्र मे प्रत्येक बीस आदमी पर एक मोटर पड़ती है और न्यूयॉर्क महानगर मे ६० लाख आदमियों के लिये सिर्फ एक लाख मोटरे हैं। अब अनुमान कर सकते हो कि वह देश कितना धनी है। वाशिंगटन मे जो कान्फ्रेंस हुई थी, उसके अनुसार अमेरिका को इंगलैंड और जापान के बराबर नौ-शक्ति रखने का अधिकार मिल गया है। फल-स्वरूप बीते महायुद्ध से अमेरिका और जापान ने जैसा लाभ उठाया, वैसा अन्य किसी भी देश ने नही उठाया।

बीसवीं सदी मे अमेरिका की और भी एक नीति बदली है। इसके पहले अमेरिका ने अपना राज्य बढ़ाने के लिये कभी भी चेष्टा नहीं की थी; परन्तु अब आवश्यकतावश उसे

वैसा करना पड़ रहा है। फिलीपाइन द्वीप-समूह आदि कई एक देश अमेरिका को हाथ लग गये हैं, किन्तु अमेरिका के लोग इसकी चेष्टा कर रहे हैं कि वहाँ के लोग उन्नत हों और स्वाधीन होने के योग्य हों। फिलीपाइन में शिक्षा-प्रचार के लिये पानी की तरह रुपये बहाये जा रहे हैं। जहाँ तक हो सकता है, वहाँ का शासन भी वहीं के लोगों से कराया जाता है। परन्तु, राज्य का भार लेकर अमेरिकनों की झंझट भी बढ़ गयी है। उन देशों की रक्षा के लिये उन्हें बहुत सेना और जंगी जहाज रखने पड़ते हैं। साथ ही बाध्य होकर अँगरेजों से भी मित्रता कायम रखनी पड़ती है।

क्या तुम बता सकते हो कि अमेरिका के संयुक्तराज्य का यह नाम क्यों पड़ा? बात यह है कि कुछ स्वतंत्र प्रान्तों के मिलने से वह गठित हुआ है; इसलिये उसे संयुक्त राज्य कहते हैं। संयुक्तराज्य शुरू में तेरह प्रान्तों के मिलने से कायम हुआ था। किन्तु, दिनों-दिन जब उसकी शक्ति बढ़ती गयी, तो सारे अमेरिका पर उसकी शाख-सी जम गयी। वह अगुआ बना। फ़िर तो जितने बिखरे हुए राष्ट्र थे, धीरे-धीरे उससे मिल गये। इस समय संयुक्तराष्ट्र, कुल ४८ राष्ट्रों से गठित है। उन अड़तालीस राष्ट्रों में प्रत्येक राष्ट्र को बहुत अंशों मे स्वाधीनता है। बहुत विषयों में उन्हें अधिकार है कि वे अपनी इच्छा से कानून बना सकें। अपनी इच्छा से कर भी लगा सकते हैं। सभी प्रान्तों में अलग-अलग कौमी

संस्थायें हैं और स्वतंत्र शासक भी चुने जाते हैं। अमेरिका के जो विदेशी सम्बन्ध हैं, उसे ही वे मिलकर निबाहते हैं। इसलिये, कोई भी प्रदेश अपनी इच्छा से लड़ाई या सुलह नहीं कर सकता। सर्व-साधारण की भलाई की गर्ज से नौ-शक्ति और फौजी ताकत साथ रक्खी जाती है और उसका खर्च चलाने के लिये हरएक प्रान्तों को रुपये देने पड़ते हैं। जब इन बातों पर विचार करना होता है कि किस ढंग के सिक्के चलाये जायँ, कैसी तौल चलायी जाय, तो सब प्रान्तों को मिलकर काम करना होता है।

एकमत होकर काम करने के लिये संयुक्तराष्ट्र की राजधानी वेलिंगटन महानगर मे कायम की गयी है। राजधानी मे सभापति महोदय रहा करते हैं। सभापति का चुनाव सभी प्रान्तों के वोटों से होता है। जो सबसे अधिक प्रदेशों से वोट पाते हैं, वही सभापति बनाये जाते हैं। सभापति के काम करने की अवधि चार वर्षों की है। अगर संयोग से बीच ही मे उनका देहान्त हो जाय अथवा कारणवश वे गैरहाजिर रहें, तो उनका काम सहकारी सभापति चलाते हैं। अमेरिका के सभापति की शक्ति अनेक स्वाधीन राजाओं से अधिक है। वे अपनी इच्छा से सेक्रेटरी या विभागों के कर्मचारियों को बहाल करके राज-काज करते हैं। इंगलैंड के मंत्रियों की जो सभा है, वह व्यवस्था परिषद् अर्थात् हाउस ऑव कॉमन्स के अधीन रहती है। मगर, अमेरिका में ऐसा नियम नहीं।

अगर सभापति चाहें, तो बिना कुछ कारण दिखाये ही किसी भी मंत्री को हटा दे सकते हैं। उन्हें अपने कामों के लिये व्यवस्था-परिषद् को किसी भी तरह की कैफियत नहीं देनी पड़ती। हाँ, सभापति का कोई काम यदि व्यवस्था-परिषद् को पसन्द न आये, तो वे उसके रुपये मंजूर नहीं कर सकते हैं। सभापति महोदय मुकर्रर तनख़ा पाते हैं। चाहे उनका काम किसीको पसन्द आये या नहीं आये, मगर उन्हें तनख़ा मिलती ही रहेगी। अर्थात् वे बहुत बातों में स्वतंत्र हैं। अगर वे कुछ ऐसा काम कर गुजरें, जो आपत्तिजनक है, तो प्रधान विचारालय से वे अपराधी बनाये जाते हैं। इंगलैंड में जिस प्रकार शासन-परिषद्, व्यवस्था-परिषद् और विचार-विभाग एक दूसरे से लगे हुए-से हैं, अमेरिका में ऐसा नहीं है। वहाँ तीनों ही विभाग अलग-अलग और स्वाधीन हैं। अगर किसी कानून को, जो व्यवस्था-परिषद् में बना हो, सभापति मंजूर न करें, तो फिर उसे पास करना असम्भव-सा हो पड़ता है। यदि दोनों सभाओं के तीन चौथाई मेम्बर एकमत हो जायँ, तो सभापति के मंजूर न करने पर भी कानून पास हो जाता है। भाग्य से अगर सभापति स्वाधीनताप्रिय और प्रभावशाली व्यक्ति हो, तो राष्ट्र को चलाने में वे काफी धाक जमा सकते हैं। लड़ाई के समय में तो राष्ट्र की अधिकतर शक्तियाँ सभापति के हाथों ही रहती है। जहाजी बेड़े और फौजी ताकत का दारोमदार उन्हीं पर रहता है। युद्ध के सारे खर्च उन्हींकी

आज्ञानुसार होते हैं, उन्हीं की आज्ञा से लड़ाई मे फौज परिचालित होती है।

महात्मा ब्राइस ने कहा है—जब शान्ति रहती है, तब तो सभापति वैसे होते हैं मानों किसी व्यापारी-दफ्तर के बड़े बाबू ; परन्तु लड़ाई के समय मे देश के सब कुछ सभापति ही होते हैं।

बहुतों के जीवन की सबसे बड़ी लालसा राष्ट्रीय सभापति होने की ही होती है। और हो भी क्यों नही ? भला शक्ति या अधिकार पाने की इच्छा किसे नहीं हो भी ? यही कारण है कि जब चुनाव का समय आता है, तो सारे संयुक्त राज्य मे खासी चहल-पहल मच जाती है। कहीं भाषण दिये जाते हैं, जुलूस निकाले जाते है। अनगिनत किताबे छापी जाती हैं और लोगों मे बाँट दी जाती है, उम्मीदवार लोग हजारों-हजार रुपये पानी की तरह बहाते हैं। उस समय उत्सव की मानो आँधी-सी उठ जाती है। चुनाव के समय एक उम्मीदवार दूसरों के छिद्र निकाला करते हैं। निन्दा-शिकायत भी होती रहती हैं। चुनाव मे चुने किन्तु एक ही आदमी जाते है और सारी कौम सिर नवाकर उनका अधिकार मान लेती हैं।

इन्तजाम आदि के लिये वाशिंगटन नगर मे दो सभायें है। पहले का नाम प्रतिनिधि सभा (Husoe of Representative) है। जन-संख्या के अनुसार सभी प्रान्तों से उस सभा मे प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। मगर, इंगलैंड मे हाउस ऑव कामन्स

की प्रतिनिधि-सभा ही जिस प्रकार सब कुछ है, वैसी रीति अमेरिका में नहीं है। फिलहाल तो वहाँ की सिनेट-महासभा ही सबसे अधिक शक्तिशाली हो उठी है। सिनेट-महासभा प्रत्येक प्रान्तों के दो-दो प्रतिनिधियों से कायम है। उसमें संयुक्त-राष्ट्र के मुख्य-मुख्य व्यक्ति ही जाने की कोशिश करते हैं। चूँकि सिनेट-सभा में थोड़े ही मेम्बर रहते हैं, इसलिये सभी विषयों पर गम्भीरता से विचार करने की उसमें सुविधा रहती है। कभी-कभी तो सभापति महोदय को भी सिनेट-सभा की सलाह पर काम करना होता है।

अमेरिका का विचार-विभाग बिलकुल स्वतंत्र है। वहाँ के जितने विचारक हैं, वे राष्ट्र-व्यवस्था के अभिभावक हैं। जो व्यवस्था राष्ट्र की ओर से लिखी हुई है, उसके विरुद्ध सभापति अथवा कोई मंत्री चलें, तो वे विचारालय में दोषी ठहरते हैं। वहाँ के सुप्रीम कोर्ट के विचारकों को बँधा वेतन मिलता है। साथ ही उन्हें काम से कोई भी नहीं हटा सकता।

इसके अलावे प्रान्त-प्रान्त में ऐसी ही दो-दो व्यवस्था परिषद् हैं। वहाँ सभापति के समान शासक चुने जाते हैं। जो लोग ऐसे किसी प्रदेश के शासक रह चुके हैं और अनुभवी हो गये हैं, ऐसे ही आदमी संयुक्त-राष्ट्र के सभापति बनने के योग्य समझे जाते हैं।

अमेरिका में कौमी दल की शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी है। इस समय वहाँ दो दल हैं। पहला डेमोक्रेटिक दल और दूसरा

रिपब्लिकन दल। अब दोनों दलों के राजनैतिक सिद्धान्तों मे कोई विशेष फर्क नहीं। किसी लेखक ने कहा है—"अमेरिका के ये दोनों दल वैसे ही हैं, जैसे लेबुल लगी हुई दो खाली बोतलें। उनके अन्दर चाहे जो भी चीज भर दो, लेबुल वही रहेगी। दोनों ही अपना-अपना स्वार्थ देखते हैं।" सभी प्रान्तों, गाँवों और नगरों मे दोनों दलों के केन्द्र और शाखायें हैं। सभी प्रधान नगरों मे उनके एक-एक नेता, जिन्हे बॉस भी कहते हैं, रहते हैं। अपने दल के सभी काम-काज बॉस ही चलाते हैं। उनकी क्षमता या अधिकार बहुत अधिक है। इन सबों का निश्चय करना उन्ही पर निर्भर करता है कि कौन-सी नौकरी किसे मिले, दल के रुपये किस मद में खर्च किये जायँ। उन्हें अप्रसन्न करनेवाले व्यक्ति राजनैतिक क्षेत्र में हर्गिज तरक्की नहीं कर सकते। अपने दल के प्रभाव को बनाये रखने के लिगे बॉस दगा-फरेब आदि सभी प्रकार की चालों से काम लेते हैं। यदि म्युनिसिपेलिटी महकमे में उस दल के आदमी अधिक चुने गये, तो वहाँ का सभी कन्ट्रेक्ट उन्हींके हाथों आ जाता है। फिर तो उनके काम के लिये खूब ही घूस लेना-देना पड़ता है। यहाँ तक कि जो आदमी सड़कों पर रोशनी जलाकर कमाना चाहे, उसे भी बॉस की खुशामदें करनी पड़ती हैं। तुम्हें यह बताने की जरूरत नहीं कि बॉस ऊँची श्रेणी के आदमी नही होते।

इसलिये, कोई भी आत्मसम्मान के भूखे, प्रतिभावान और

योग्य व्यक्ति ऐसों की खुशामदें कर राजनैतिक क्षेत्र में आना पसन्द नहीं करते हैं। हमारे यहाँ या विलायत में राजनैतिक लोगों को सर्वसाधारण से जैसी श्रद्धा और इज्जत मिलती है, अमेरिका में वैसी नहीं मिलती। वहाँ राजनैतिक तो मामूली आदमी समझे जाते हैं। यह भी एक कारण है कि बड़े-बड़े लोग राजनीति में हाथ नहीं बँटाते हैं। एक बात और भी है कि वहाँ वाणिज्य व्यापार इतना उन्नत है, धन और नाम कमाने के लिये इतने क्षेत्र पड़े हैं कि राजनीति में हाथ बँटाकर गरीबी मोल लेने को कोई तैयार ही नहीं होते। वहाँ तो व्यापार की बदौलत सैकड़ों करोड़पति बन गये हैं।

वहाँ के प्रदेशों में विचार-प्रथा बड़ी शिथिल है। बहुत बड़े-बड़े अपराधों का दोषी होने पर भी बिना विचार किये ही उसे छुट्टी मिल जाती है। अमेरिका के गणतंत्र की यह एक बड़ी बदनामी है।

सर्व-साधारण की राय से अमेरिका में जितने काम होते हैं, उतने किसी भी देश में नहीं होते। वहाँ का अखबार किसी मुख्य नेता से कहीं अधिक श्रद्धा पाता है। वास्तव में संयुक्त-राष्ट्र में गणतंत्र का पूरा विकास हुआ है। हो सकता है, आज भी उसमें दोष हों, भूलें हों, मगर संयुक्त-राष्ट्र ने मनुष्यों की आजादी का जो आदर्श दिखाया है, उसके लिये हम उनके कृतज्ञ हुए बिना नहीं रह सकते।

अमेरिका में शिक्षा-प्रचार के लिये बहुत ही अधिक

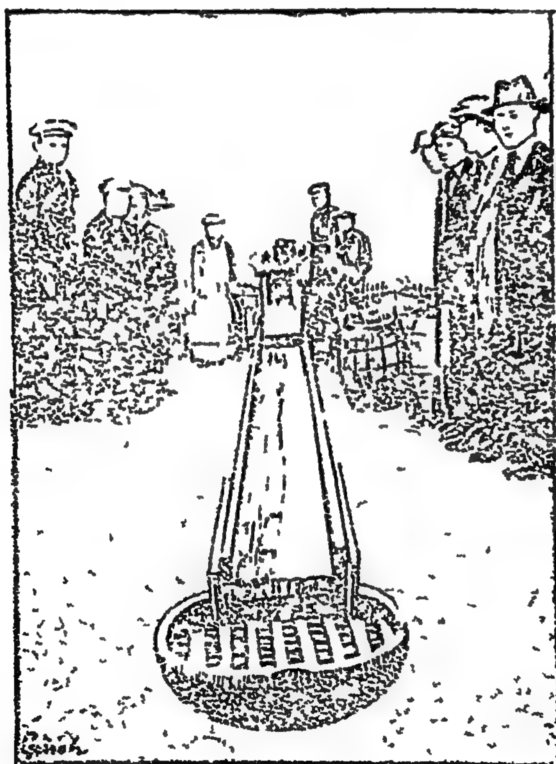
कोशिशें की जाती हैं। फल-स्वरूप वहाँ के लोग जैसे शिक्षित हैं, वैसे शिक्षित अन्य किसी भी देश के लोग नहीं है। हमारे यहाँ सौ पीछे ५ आदमी शिक्षित हैं और वहाँ ठीक उसके उलटा है। वहाँ सैकड़े पाँच से भी कम आदमी अशिक्षित हैं। अधिकतर विश्वविद्यालय के खर्च राष्ट्र से ही चलाये जाते हैं। हर प्रान्त मे कम से कम एक विश्वविद्यालय तो अवश्य ही है, कहीं-कही कई भी हैं। तुम यह मत समझ लेना कि राष्ट्र से खर्च दिया जाता है, इसलिये विश्वविद्यालय राजनैतिकों ही की इच्छा से चलाये जाते होंगे। नहीं, वहाँ का सभी भार अध्यापकों और अध्यक्षों पर रहता है। उन विश्वविद्यालयों में संसार के लगभग सभी जानने योग्य विषयों की शिक्षा दी जाती है। सयुक्त-राज्य में सब मिलाकर ४८ प्रदेश हैं और विश्वविद्यालयों की तादाद है १४०। अब तुम समझ सकते हो कि वहाँ के लोग विद्या का कैसा आदर करते हैं। वहाँ के विश्वविद्यालयों मे सबसे प्रसिद्ध जोन होपकिन्स और हार्मार्ड विश्वविद्यालय हैं।

संयुक्त-राज्य के लोगों को धर्म के विषय मे पूरी स्वाधीनता है। इंगलैंड में राष्ट्रीय प्रतिष्ठान से ही धर्म सम्प्रदायों को सहायता दी जाती है। अमेरिका मे लेकिन ऐसा नियम नही है। संयुक्त-राज्य धर्म के विषय में बिलकुल उदास-सा रहता है। मगर, इससे यह मत समझो कि वहाँ धर्ममत की अधिकता नहीं है। वहाँ के पहले अधिवासी प्यूरिटन थे। यानी वे भोग-

विलास छोड़कर कतई ईश्वर के बन्दे हो गये थे। वे इस बात को नहीं मानते थे कि धर्म के लिये पुरोहित के बीच-बचाव की या अनुष्ठानों की जरूरत है। इस समय अमेरिका में प्यूरिटन मतवाले नहीं हैं। आज भोग-विलास की दृष्टि से अमेरिका मानो इन्द्रलोक हो रहा है। मगर, भोग-विलास के बीच में रहते हुए भी बहुत-से लोग त्यागधर्म को अपना रहे हैं। शायद तुम लोग जानते होगे कि अमेरिका के अनेक स्त्री-पुरुष स्वामी विवेकानन्द के शिष्य बने थे और उन्होंने संन्यास व्रत को अपनाया था। आजकल वहाँ दूर-दूर के देशों के बहुत-से लोग, बहुत जाति के लोग बसते हैं; इसलिये वहाँ धर्ममत भी अनेक हैं। कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट, ग्रीक आदि के गिर्जे हैं; परन्तु किसीसे भी कोई विवाद नहीं होता। आजकल एक नये मेथिडिस्ट सम्प्रदाय ने भी वहाँ अपना प्रभाव बढ़ाया है। हमारे यहाँ बंगाल में बहुत-से मेथिडिस्ट प्रचारक आ-आकर धर्म-प्रचार कर रहे हैं।

इस समय अमेरिका सभी बातों मे उन्नत है। संसार के सभी देशों में शराब की बिक्री होती है और उस बिक्री से, मादक-द्रव्यों की आमदनी से राष्ट्र का बड़ा लाभ होता है। परन्तु अमेरिका की शिक्षित जनता ने निश्चय किया है कि शराब पीने का उत्साह देकर उन रुपयों से लोगों की भलाई करना उचित नहीं है। इसी विचार से अमेरिका ने संसार में सबसे पहले हिम्मत बाँधी और नशीली चीजें बेचने का रिवाज

ही उठा दिया। यदि कहीं शराब पायी जाती है, तो सरकारी लोग उसे पनाले में डाल देते हैं। अगर सभी कोई इसी आदर्श का अनुकरण करें, तो सचमुच ही पृथ्वी के दुख का बोझ बहुत हल्का हो जाय।



अमेरिका के लोग कहीं शराब मिलने पर इस तरह पनाले में डाल देते हैं।

इन दिनों वहाँ की स्त्रियों में स्वाधीनता की अनोखी प्रवृत्ति देखी जाती है। बहुतेरी स्त्रियाँ तो पुरुषों की कोई

मदद न लेकर ही जिन्दगी बसर करने की कोशिशें कर रही हैं। उन लोगों की धारणा है कि रुपये-पैसे की बातों में स्वाधीन हो जाने ही से हम पुरुषों की अधीनता से छूट जायँगी। स्त्रियों को राष्ट्रीय अधिकार संसार में सबसे पहले अमेरिका ने ही दिया था।

शिक्षा, स्वास्थ्य, ज्ञान और विज्ञान की उन्नति में संयुक्त-राज्य बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है। हालाँकि अमेरिका नया महादेश है, फिर भी आज वह प्राचीन महादेशों को सिखाने का गर्व कर सकता है।

मैक्सिको

तुम्हें मालूम हो गया कि अमेरिका का युक्त-राष्ट्र संसार मे सभ्यता की कैसी ऊँची चोटी पर चढ़ा हुआ है। मगर, यह अमेरिका की प्राचीन सभ्यता की निशानी नहीं है। वहाँ की जितनी भी उन्नति हुई है, सब वर्तमान यूरोप के लोगों से हुई है। लेकिन, अमेरिका के लोग यूरोपियनों के आने के बहुत ही पहले सभ्य हो चुके थे। उसी प्राचीन सभ्यता का परिचय देने के लिये हम तुम्हें मैक्सिको का थोड़ा-बहुत परिचय देंगे। वहाँ की प्राचीन सभ्यता का ध्वंसावशेष ही रह गया है। और, उसे देखकर ही हम समझ सकते हैं कि वहाँ कैसी उन्नत सभ्यता का विकास हुआ था।

मैक्सिको अमेरिका के दक्षिण-पश्चिम में है। उत्तर से दक्षिण की ओर उसकी लम्बाई १९९० मील और चौड़ाई साढ़े सात मील है। छठी शताब्दी मे वहाँ जो लोग रहते थे, वे एकबारगी ही असभ्य नही थे। मेक्सिको की पुरानी कथा से यह बात साबित होती है कि उनमे सभ्यता का प्रकाश फैला था। सातवीं सदी मे टॉलटेक़ नाम की एक जाति मैक्सिको में आकर बस गयी। टोलन या टूला में उनकी राजधानी बनी। नगर बनाने की प्रणाली उन लोगों को मालूम थी। ज्योतिर्विद्या से उन्हें बहुत ही प्रेम था। उन्होंने आकाश का

पर्यवेक्षण किया था, जिससे वे ज्योतिष की बहुत सी बातें जान सके थे। आठवी सदी के शुरू मे इकोयटिजिन नाम के एक आदमी ने एक राज्य कायम किया था। इकोयटिजिन के वंशधरों ने पाँच सौ वर्षों तक राज्य के सुख लूटे थे। उसके बाद अकाल पड़ने तथा घरेलू विवादों के कारण उनकी शक्ति लोप हो गयी।

इसके कुछ दिनों के बाद एक नयी असभ्य जाति, जिसे चिचिमेक कहते थे, उत्तर की तरफ से आकर टॉलटेक देश में रहने लगी। उस जाति के लोग सूर्य को पिता और पृथ्वी को माता कहा करते थे और उनकी उपासना करते थे। यहाँ आने के पहले उनका कोई निश्चित देश या घर नही था। बंजारे की तरह वे जगह-जगह घूमा करते थे। टॉलटेक लोगों ने चिचिमेकों की अधीनता स्वीकार कर ली। उन दोनों जातियों के सम्मिलन से एक नयी शक्ति कायम हुई। उन लोगों ने कोलञयाकान नाम के राजवंश की बुनियाद डाली। उनके बाद भी अन्य-अन्य जातियाँ आकर वहाँ बसती रहीं। सबके पीछे अजटेक या मेक्सिकन जाति ही आयी थी। उस जाति के लोग मेक्सिटली देवता की पूजा करते थे। कारण ही एक नगर बसाकर उन लोगों ने उसका नाम मेक्सिको रक्खा था : और-और लोग मेक्सिकन से बहुत जलते थे। परन्तु, लोगों की शत्रुता करने पर भी मेक्सिकनों की धन-सम्पत्ति की तरक्की होने ही लगी। आस-पास के प्रदेश उनके कब्जे में आ गये।

जब उनकी शक्ति चढ़ती गयी, तो उन्होंने राज्य-शासन की ओर ध्यान दिया। उनमें से बीस सम्भ्रान्त आदमी चुने जाते थे, जो सभी कामों की देख-भाल और प्रबन्ध करते थे। सन् १३५२ में उन्होंने इस प्रकार के शासन को छोड़ दिया। उन्होंने फिर से एक राजा बनाया और सभी तरह के अधिकार उनके हाथों सौंप दिये। थोड़े ही दिनों में मेक्सिकन लोग सभ्यता के ख्याल से अमेरिका के अन्य प्राचीन लोगों से श्रेष्ठ गिने जाने लगे। उनमें जो व्यक्ति राजा होने के उम्मीदवार होते थे, उनकी उमर तीस से कम नहीं होनी चाहिये थी। उसके अलावे उनमे फौज के परिचालन की योग्यता भी जरूरी थी। राजा को मनमानी करने का अधिकार नहीं था। उन्हें देश के नियम-कानूनों के अनुसार ही चलना पड़ता था। राजा और सम्भ्रान्त लोगों के बाद पुरोहित माननीय थे। पुरोहितगण सिर्फ धर्म-कर्म की चिन्ता मे ही डूबे रहते, राजनैतिक विषयों मे कभी भी दखल नहीं देते। बच्चों की शिक्षा का भार उन्हीं पर रहता था। दुःख-विपद के समय में लोग तरह-तरह से उनकी सहायता लेते थे। उनका नैतिक आदर्श भी बहुत उन्नत था। अगर कभी कोई व्यभिचार करता था, तो उसे मौत की सजा दी जाती थी। और भी, चोरी, हत्या और मद्यपान के लिये भी मौत की सजा दी जाती थी। विचार के लिये राजधानी तथा सभी प्रदेशों मे विचारालय थे। विवाह करने के लिये सबों को बढ़ावा दिया

जाता था। उनका पारिवारिक जीवन बहुत सुखी था। स्त्री कभी सम्पत्ति की हकदार नहीं हो सकती थी। राज-काज का खर्च राजकीय जमीन की आमदनी से चलता था। इसके अलावे एक तरह के कर तथा राजा को भेंट में जो मिलता था, उनसे राज का खर्च चलता था। फौज संगठित थी, उन्हें शिक्षा भी भली-भाँति दी जाती थी। अन्य-अन्य प्रदेशों से लगाव रखने के लिये अच्छी-अच्छी सड़कें थीं।

सड़कों के सहारे वाणिज्य का अच्छा विस्तार हुआ था। नदी और झीलों द्वारा नौका से व्यापार चलता था। मगर, माल-असबाब ढोने के लिये वहाँ पशुओं से काम नहीं लिया जाता था। जब स्पेनवालों ने मैक्सिको को जीत लिया और वहाँ भार ढोनेवाले पशु ले आये, तो वहाँ के लोगों के अचरज का ठिकाना न रहा। इन बातों को वे जानते थे कि धरती के अन्दर से रत्न निकाले जाते हैं और खनिज पदार्थों को अन्दर से उठाना पड़ता था। ज्योतिष में उन लोगों ने इतनी तरक्की की थी कि उन्हें यह मालूम था कि ग्रहण क्यों लगता है और कैसे दिखायी पड़ता है। अपनी अनोखी बुद्धिमत्ता दिखाते हुए उन्होंने नये ढंग की पंजिका का आविष्कार किया था। चिकित्सा-शास्त्र, वनस्पति-विज्ञान और प्रकृति-विज्ञान का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। खेतों में वे ताँबे और काँसे के हथियारों से काम करते थे।

मैक्सिकनों में धर्म-भावना अत्यन्त ही प्रबल थी। वे

विश्वासपूर्वक धर्म के अनेकों अनुष्ठान करते थे। वे सबों को बनानेवाले एक ही भगवान पर विश्वास करते थे। लेकिन, केवल उन्हे ही नही, उनकी सहायता करनेवाले कुछ सहकारी देवताओं को भी मानते थे। उनके सबसे बड़े देवता हिवट्जिलो पोचटलि थे, जो युद्ध-विद्या मे बड़े कुशल माने जाते थे। सभी देवताओं की मिट्टी की मूर्तियाँ बनायी जाती थीं। कभी-कभी लकड़ी, पत्थर अथवा अन्य कीमती धातुओं की भी मूर्तियाँ गढ़ी जाती थीं। प्रत्येक मन्दिर मे बहुत-से पुरोहित रहा करते थे। वे बड़ी धूम-धाम से पूजा-पाठ किया करते थे। परन्तु उनके धर्म का यह अंग तो बड़ा ही कठोर था कि वे नर-बलि चढ़ाते थे। टेनोचटिट्लान नामक देवता के एक-एक मंदिर मे प्रति वर्ष ढाई हजार आदमियों की बलि दी जाती थी। और, बलि के ये पात्र वे ही लोग होते थे, जो युद्ध मे हार जाने पर कैद किये जाते थे।

स्पेनवालों की चढ़ाई के पहले मेक्सिकनों का मुख्य नगर टेनोचटिटलान काफी लम्बा-चौड़ा और बहुत ही समृद्धिशाली था। नगर मे साठ हजार मकान तथा पाँच लाख आदमी थे। अगर बड़ी सड़कों के बीच मे कहीं खाई मिल जाती, तो उसपर पुल बाँध दिया जाता था। शाहीमहल शहर के बीच में था, परन्तु शाहीमहल मे कोई सुन्दर इमारत नही थी। उससे सटा हुआ ही एक मकान और था, जिसमे स्पेन के विजयी सेनापति कोर्टिस को ठहराया गया था। वह मकान इतना

बड़ा था कि कोर्टिस की सारी फौज ही उसमे अँट गयी थी। शहर में चोरी आदि कम ही हुआ करती थी, इसलिये कि नगर के शांतिरक्षक लोग अपना कर्तव्य मन लगाकर करते थे। नगर की सफाई और पानी के प्रबन्ध के लिये लगभग एक हजार आदमी बहाल थे।

बहुत-से लोग शिल्प और कारीगरी से अपनी रोटी कमाते थे। मगर, सभी तरह के शिल्पों के लिये अलग-अलग आदमी थे। कोई जुलाहे का काम करता था, कोई सोनार का और कोई लोहार का। चित्रकारी भी वे जानते थे। चित्र ही उनके अक्षर थे, उन्हींके सहारे वे लिखा करते थे।

सन् १५०२ में, जब उनके राजा आहुइटजोटल की मृत्यु हो गयी, तो सिंहासन पर द्वितीय मॉन्टेजूमा बैठे। वे कुशल और युद्ध-प्रिय राजा थे। उन्होंने दक्षिण की ओर हान्डुरस और निकारगुया तक को जीत लिया था। उनके शासन-काल मे मेक्सिको की राजनीति में भयानक रद्दो-बदल हुआ था। नियम-कानून तो इतने कड़े कर दिये गये कि लोगों को उनसे बड़ी असुविधा होने लगी। परन्तु, साथ ही यह बात भी थी कि जो कोई विश्वासी की नाईं राजा की सेवा करते थे, उन्हें यथोचित पुरस्कार भी मिलता था। सर्वसाधारण की भलाई में भी वे खुले हाथों खर्च करते थे। उत्सव में उन्होंने जैसे मेक्सिको की राजसभा को सजाया था, वैसा कोई नहीं सजा सका था। परन्तु, उन खर्चों को चलाने के लिये प्रजा पर अधिक कर

लगाया गया था, जिससे लोग ऊब-से उठे थे और समय-समय पर बलवा भी मचा दिया करते थे।

सन् १५१६ तक मॉन्टेजम्ग की शक्ति काफी बढ़ गयी थी। उसी समय स्पेन के हारनेन्डो कॉर्टिस मैक्सिको के उपकूल में उतरे। उनके साथ साढ़े पाँच सो सैनिक, सिर्फ १० तोपें और पाँच घोड़े थे। यह कोर्टिस की आत्मशक्ति का ही नमूना था कि इस तरह वे मैक्सिको को आने का साहस कर सके थे। जहाज के किनारे लगते ही कुछ मेक्सिकनों ने उनकी राह रोकी; परन्तु उनलोगों को उन्होंने आसानी से हरा दिया। यहाँ आते ही उन्होंने एक नया नगर बसाया, जिसका नाम मेराक्रूज रक्खा। उस नगर में अपने कुछ आदमी रखकर वे देश के भीतरी भागों की ओर बढे। टलाकान लोगों से उनकी चार लड़ाइयाँ हुईं—चारों मे उन्होंने उन्हें हरा दिया और उनलोगों के नगर पर दखल जमा लिया।

स्पेनवालों की गोरी चमड़ी देखकर मैक्सिको के लोगों ने सोचा कि स्वयं देवतागण उनपर चढ़ाई करने को आये हैं। उनकी रण-कुशलता देखकर तो उनका विश्वास और भी दृढ़ हो गया। उनके युद्ध करने का उत्साह बिलकुल ही जाता रहा। स्पेन के सैनिक जहाँ कहीं भी जाते, जीत मानों आसानी से हो जाती। उन्होंने लोगों को हराकर ईसाई बनाने की चेष्टायें कीं; पर उन लोगों को अपने मजहब से विशेष प्रेम था। अर्थात् कोर्टिस को इस काम में वैसी सफलता

न मिल सकी। उनका मतलब राजनैतिक क्षेत्र में जरूर पूरा हुआ था। टलाकान के लोगों को उन्होंने स्पेन के राजा की अधीनता स्वीकार करने पर बाध्य किया। और, आगे चलकर उन्हींकी सहायता से मैक्सिको पर चढ़ाई करने की ठानी।

सन् १५१६ के ८ नवम्बर को कोर्टिस मैक्सिको नगर पहुँचे। यह खबर पाकर मॉन्टेजूमा ने उनके पास दूत भेजा और कहलवाया कि आप नगर में घुसने की हिम्मत तो हर्गिज न करें। इसपर भी जब कोर्टिस शहर में घुस ही पड़े, तो लड़ाई के बजाय मन्टेजूमा ने अतिथि की नाईं उनका आदर-सत्कार किया। उनके रहने के लिये कई एक बड़े और मजबूत मकान दिये। कोर्टिस उन मकानों से किले का काम निकालने लगे। शहर की समृद्धि देखकर तो उनके मुँह में पानी आ गया और शुरू ही से ऐसी कोशिशें करने लगे कि आखिर इसे किस उपाय से छीना जाय?

राजा के इस काम से मेक्सिकन लोग बड़े असन्तुष्ट हुए। वे ऐसा ही भाव दिखाने लगे। उन लोगों के विचार से कोर्टिस को शहर में न घुसने देना ही अच्छा था। कारण ही पग-पग पर वे स्पेनवालों का विरोध करने लगे, और एक दिन सत्रह आदमियों ने मिलकर उनपर धावा बोल दिया। कोर्टिस खीझ उठे। उन्होंने राजा से भेंट की और सज्जन की तरह मिलने के लिये जाकर उन्होंने राजा को गिरफ्तार कर लिया। अपने ही शाही महल में राजा गिरफ्तार कर

लिये गये। उन्हें चूँ करने का भी मौका नहीं दिया गया। जब वे सड़कों से स्पेनिशों के डेरे पर ले जाये जाने लगे, तो भी उन्हें धमकी दी गयी कि यदि आप अपने कैद होने की बात लोगों पर जाहिर करेंगे, तो इसी दम आपका काम तमाम कर दिया जायगा।

प्राणों के भय से राजा ने कहा कि मैं अपनी इच्छा से कोर्टिस के डेरे पर जा रहा हूँ। वहाँ ले जाकर कोर्टिस ने उनके हाथों में बेड़ियाँ डाल दीं। अपनी मूर्खता के कारण असहाय राजा कैद किये गये। उनके बाद कोर्टिस ने धावा करनेवाले उन सत्रह आदमियों को पकड़वा मँगाया और जीते जी उन्हें आग में फूँक दिया। सभ्यता पर गर्व करनेवाले कोर्टिस ने इस रूप में अपनी सभ्यता का परिचय दिया।

कोर्टिस ने राजा मान्टेजूमा से शपथ करायी कि वे स्पेन के राजा की अधीनता कबूल करते हैं। लगे हाथ यह भी शर्त रही कि वहाँ के कुलीन वर्ग को भी वे स्पेन के राजा की अधीनता कबूल करायेंगे। फिर कोर्टिस ने उनसे एक लाख रुपये लिये और उन्हे छोड़ दिया। इसके बाद उन्हें खबर मिली कि उनकी जगह पर स्पेन से एक अन्य सेनापति आये हैं। उसी समय सिर्फ २२० सैनिकों को साथ लेकर उन्होंने नामारेज पर चढ़ाई कर दी। कोर्टिस की चतुराई से अपनी फौज के साथ नामारेज कैद हो गये। उन सैनिकों को कोर्टिस ने अपने दल में शामिल कर लिया और फिर मैक्सिको जा पहुँचे। वहाँ

उन्होंने क्या देखा कि मैक्सिकोवालों ने स्पेनवालों के विरुद्ध खुल्लम-खुल्ला विद्रोह कर दिया है। कोर्टिस ने मान्टेजूमा को सर्व-साधारण के सामने हाजिर किया। कोर्टिस के कहे मुताबिक विद्रोह रोकने के लिये मान्टेजूमा ने भाषण किया। मगर, देश की आजादी के लिये लोगों ने दृढ़ संकल्प कर लिया था। उन्होंने राजा को तीर से मारा। उसी तीर के लगने से १५२० के जून में उनकी मृत्यु हो गयी।

उसके बाद बड़ी भारी शक्ति जुटाकर मेक्सिकनों ने उनपर चढ़ाई करके उन्हें नगर से निकाल-बाहर किया। वे भाग खड़े हुए और मेक्सिकन लोगों ने उनका पीछा करना शुरू किया। जो सैनिक सबसे पीछे थे, उन्हें तो मेक्सिकनों ने उस लोक की राह बतायी। छः दिन तक इसी प्रकार भागते रहने के बाद एक दिन कोर्टिस ने मेक्सिकनों को बुरी तरह हराया। मैक्सिको की किस्मत का फैसला हो गया। वहाँ की स्वाधीनता का सूरज सदा के लिये डूब गया। बाद में वहाँ के कुछ लोगों की मदद लेकर कोर्टिस मैक्सिको पहुँचे।

उस समय मान्टेजूमा के दामाद गुयाटोमोजिन राजा बन चुके थे। वे अत्यन्त दृढ़ थे। स्पेनवालों का सामना करते हुए उन्होंने सतहत्तर दिनों तक नगर को बचाया था। स्पेनवालों की कठोर चढ़ाई से वह पुराना और सुन्दर नगर तहस-नहस हो गया। उजाड़-सा नगर स्पेनवालों के अधिकार में आया। गुयाटेमोजिन ने जान लेकर भागने की कोशिश की; किन्तु

कोर्टिस की चतुराई से वे पकड़े गये। कोर्टिस उनसे बड़ी वेरहमी से पेश आये। अन्त मे उन्हें और बहुत-से सम्भ्रान्त लोगों को कत्ल करवा दिया गया।

अब कोर्टिस मैक्सिको को नये सिरे से तैयार करने में लग गये। नगर-निर्माण के लिये उन्होंने वहीं के लोगों को मुकर्रर किया। आजटेक्क साम्राज्य के और-और भागों को जीतने मे उन्हें कठिनाई न पड़ी। इस चेष्टा मे उन्होंने जान-सी लड़ा दी कि वहाँ यूरोपीय सभ्यता का प्रचार हो। साथ ही कैथोलिक धर्म के प्रचार के लिये भी उन्हें कुछ कम उत्साह नही था। मैक्सिको मे फौजी शक्ति पर निर्भर करते हुए उन्होंने एक राज्य कायम किया। उस राज्य का प्रधान उन्होंने अपने ही को माना। सन् १५२१ के अक्तूबर मास मे सम्राट् पाँचवें चार्ल्स ने जीते हुए प्रदेशों को स्पेन के अधिकार मे मान लिया। कोर्टिस को उन्होंने उन प्रान्तों का शासक बनाया। वहाँ के लोगों पर स्पेनवालों ने बहुत ही अत्याचार करना शुरू किया; सभी लोगों से वे खरीदे हुए गुलामों-जैसा व्यवहार करने लगे। खेती करना और खानों से रत्नादि निकालना ही वहाँ के लोगों का प्रधान काम हो गया।

उसके बाद से स्पेन सम्राट् के एक प्रतिनिधि मैक्सिको पर शासन करते थे। एक-एक कर चौंसठ प्रतिनिधियों ने मैक्सिको पर शासन किया था। उन चौंसठ प्रतिनिधियों मे सिर्फ एक ही आदमी मैक्सिको के थे। स्पेन के लोग मैक्सिको की उन्नति

पर कोई ध्यान नहीं देते थे, केवल धन बटोरना ही उनका उद्देश्य था। कहना फिजूल है कि ऐसी दशा में वहाँ के लोग सुखी नहीं थे। स्पेन सरकार मैक्सिको के किसी सम्भ्रान्त व्यक्ति को भी ऊँचे पद पर नियुक्त नहीं करती थी।

इसी तरह तीन सौ वर्ष बीते। देश के सभी लोग स्पेन-वालों से नाखुश थे ; परन्तु तो भी उन्हें बागी बनने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। पिछली शताब्दी के शुरू में नेपोलियन ने स्पेन को जीता और अपने भाई जोसेफ को दे दिया। यह देखकर मैक्सिको के लोग बहुत विरक्त हो उठे। सन् १८०८ की सोलहवीं सितम्बर को मैक्सिको के राज-प्रतिनिधि ने, जिनका नाम डॉन जोसी था, स्वतंत्र होकर राज्य करने का भाव प्रकट किया। मैक्सिको के लोग उससे तो और भी नाराज हो उठे। वे बगावत करने पर तुल गये।

बागियों का देश-प्रेम सचमुच ही सराहनीय था ; मगर शुरू-शुरू उनसे कुछ करते न बना। लगभग सभी लड़ाइयों में स्पेनवालों से उन्हें मुँह की खानी पड़ती थी और पहाड़ों की गुफाओं में छिप जाना पड़ता था। १८२० तक तो यों ही बीता। बाद में एक नये आदमी उनके नेता बने, जिनका नाम डॉन आनटिन इटुर बाइड था। उनकी कोशिशों से मैक्सिको के लोग स्वतंत्रता की राह पर बहुत कुछ आगे बढ़े। सन् १८२१ की २४ वीं फरवरी को उन्होंने घोषणा कर दी कि स्पेन की अधीनता से मैक्सिको मुक्त हो गया। वहाँ के सभी

प्रदेशों ने उनकी अधीनता कबूल कर ली, विद्रोह कामयाब हुआ। किन्तु, जब अन्तर्विप्लव की शंका हुई, तो कुछ दिनों के बाद उन्हें देश निकाले की सज़ा हुई।

सन् १८२४ के चौथे अक्तूबर को मैक्सिको में कांग्रेस-सभा बैठी। उस सभा में राष्ट्र-शासन की प्रणाली निश्चित की गयी। शासन-पद्धति बहुत-कुछ संयुक्त-राज्य की शासन-प्रणाली-सी ही हुई। इस समय मैक्सिको में राजा नहीं हैं। वोट देकर प्रजागण जिस आदमी को सभापति बनाते हैं, उन्हीं पर राज्य का सभी भार दिया जाता है। मगर, वे अपनी मनमानी नहीं कर सकते। उन्हें साधारण प्रजा के मतामत के अनुसार ही काम करने को बाध्य होना पड़ता है। एक बात है कि मैक्सिको मे साधारणतया वे ही सभापति चुने जाते हैं जो शक्तिशाली सेनापति होते हैं। यही कारण है कि युद्ध-शक्ति के अनुसार कभी-कभी वे मनमानी-घरजानी भी करने लगते थे। यहाँ तक कि कुछ सभापतियों ने तो राज-मुकुट पहनने की भी कोशिशें की थीं। इस तरह की कुछ लालसाओं के लिये उन्हें बहुत ही अपमान सहना पड़ा था।

मैक्सिको में इसी तरह अन्तर्विप्लव चलता रहा। अन्त में वहाँ फ्रांसीसी सेना का प्रभाव बढ़ने लगा (१८६२)। फ्रांसीसियों की प्रबल सेना ने वहाँ अपना प्रभाव बढ़ा लिया। फ्रांसीसी सेनापति की सलाह से मैक्सिको के प्रधान-प्रधान लोगों ने ऑस्ट्रिया-सम्राट् के भाई मेक्सिमिलन को राजा बनाना चाहा।

मेक्सिमिलन ने कहा—"यदि मैक्सिको के लोग हमें खुशी-खुशी मंजूर करें, तो हम राजा हो सकते हैं । अन्तर्विप्लव से पिंड छुड़ाने की गर्ज से लोगों ने मैक्सिमिलन का राजा के नाम से स्वागत किया । अपनी प्रजाहितैषिता के कारण मैक्सिमिलन सबों के प्रिय हो उठे। परन्तु, फ्रांसीसी दल का लौट जाना था कि विपक्षी दल के लोग जाग पड़े । राजा के खिलाफ उनलोगों ने बगावत खड़ी की । काफी दिनों तक विवाद चलता रहा । आखिरकार राजा की तरफ का दल हार गया। सन् १८६७ के १६ जून को राजा मैक्सिमिलन और उनके दो सेनापति गोली के निशाने बनाये गये । तब से वहाँ गणतंत्र शासन ही होता आ रहा है ।

मैक्सिको में एक प्रान्त था, जिसका नाम टेक्सस था। किन्तु, वह प्रदेश अब स्वाधीन होकर संयुक्त राज्य में शामिल हो गया है । अब वह सभी विषयों में दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहा है।

और, एक प्रदेश मैक्सिको में था, जिसे गुयाटिमाला कहा करते हैं। अब वह मैक्सिको से अलग हो गया है और वहाँ गणतंत्र शासन है। उसकी राजधानी भी गुयाटिमाला नगर ही है। वहाँ की राष्ट्रीय शक्ति का अधिकतर भार सभापति पर ही है ।

ऐसा कहा जाता है कि कोर्टिस तथा उनकी सेना ने मैक्सिको के चालीस लाख आदमियों को मार डाला था। वे

कहा करते थे कि ईसाई-धर्म का प्रचार करने के लिये ही हमने इतनी हत्यायें की थीं। जो कोई भी ईसाई धर्म मानने में कुछ भी आपत्ति करते थे, वे कोर्टिस के कठोर सैनिकों द्वारा मार डाले जाते थे। इस तरह के भय दिखा-दिखाकर कोर्टिस ने मैक्सिको मे ईसाई धर्म का प्रचार किया था। धर्म के नाम पर लोहू वहाने का ऐसा दृश्य और कहीं नहीं देखा गया। ईसाई-धर्म भी कोर्टिस के ऐसे काम का समर्थन नहीं करता। एक अँगरेज ऐतिहासिक ने कहा है—कोर्टिस को ईसाई-धर्म का प्रचारक कहने से शैतान का दूत कहना अधिक उचित है।

मैक्सिको के ऐश्वर्य पर स्पेनवालों की सनीचर की नजर पड़ी थी। उनसे जहाँ तक बन पड़ा, मैक्सिको को चूसा किया। इसी कारण से आज तक भी मैक्सिको अमेरिका के और-और राष्ट्रों-जैसा उन्नत नहीं हो सका है। वहाँ के देशी लोगों की संख्या घटती गयी थी। वहाँ मिश्रित जाति के लोगों की ही तादाद अधिक है। बीते महायुद्ध मे मित्र-शक्ति का साथ देकर मैक्सिको ने अपने सत्साहस का अच्छा परिचय दिया था।

ग्रीनलैंड और वेस्ट-इन्डिज

तुम लोग मोटा-मोटी यही जानते हो कि कोलम्बस ने सबसे पहले अमेरिका का आविष्कार किया। परन्तु, यह बात बिलकुल सत्य नहीं । क्योंकि, कोलम्बस के जन्म के प्रायः पाँच सौ वर्ष पहले ही नॉरवे के कुछ साहसी नाविकों ने अमेरिका के किन्हीं-कीन्हीं भागों का पता लगा लिया था । कोलम्बस की अमेरिका-यात्रा करने के दो सौ साल पहले लोग अमेरिका की बात ही भूल गये थे। यही कारण था कि कोलम्बस को आविष्कारक की इज्जत मिली। नौवीं शताब्दी के अन्त में नॉरवे के कुछ लोग उत्तर के ग्रीनलैंड नामक देश में पहुँचे । वहाँ दो उपनिवेश कायम किये गये थे । सन् १३७६ तक तो वे दोनों उपनिवेश काफी समृद्ध थे । किन्तु, उसी साल वहाँ के लोगों ने पश्चिम के उपनिवेश को तहस-नहस कर दिया। सन् १४०६ तक तो प्रतिवर्ष जहाज से डेनमार्क के लोग वहाँ जाया करते थे। मगर, पन्द्रहवीं सदी में डेनमार्क में विद्रोह की आग भड़की ; तब से फिर कोई जहाज ग्रीनलैंड न भेजा गया। उपनिवेशों में भी कोई जहाज नहीं था। फलतः, उन दिनों ग्रीनलैंड से यूरोप का सभी सम्बन्ध टूट गया। ग्रीनलैंड के रहनेवालों की प्रबल चढ़ाई से पहली बार तो वहाँ पश्चिमीय प्रभाव न जम सका।

सन् १७२१ में डेनमार्क से फिर कुछ लोग ग्रीनलैंड पहुँचे।

ग्रीनलैंड बर्फीला देश है । वहाँ अधिक आदमी वास नहीं कर सकते हैं; इसलिये वहाँ कुल १० हजार आदमी रहते हैं और उनमे भी बहुत-से लोग यूरोप के हैं।

वेस्ट-इंडिज अटलांटिक महासागर के उपकूल में यानी उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के बीच मे हैं। जिसको वेस्टइंडिज कहते हैं, वह लगभग छे सौ बिखरे हुए द्वीपों से मिलकर बना है। उनमे से अनेक टापू तो बहुत ही छोटे हैं। कितने तो इस कारण से लोगों के रहने काबिल नहीं हैं, क्योंकि उनमें बालू और पत्थर ही भरे पड़े हैं। उन टापुओं को हम तीन भागों मे बाँट सकते है। उन तीनों भागों के नाम क्रम से बहामस्, एन्टिलिस और कारिब्बेस हैं। वे द्वीप-समूह एक दूसरे से कुछ दूर-दूर पर हैं। बहामा सबसे उत्तर मे है और फ्लोरिडा उसके पास है।

कोलम्बस सबसे पहले बहामा द्वीप-समूह के ही एक द्वीप मे उतरे थे । उस द्वीप का नाम उन्होंने सेंट-सेलमेडोर रक्खा था, परन्तु आजकल वह कैट-आइलैंड यानी बिल्ली द्वीप कहलाता है । उस समय बिल्ली द्वीप आदमियों से खचाखच भर रहा था। बाद मे कोलम्बस को यह बात मालूम हुई थी कि अमेरिका के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के लोगों से उन द्वीपों के लोगों का रूप-रंग मिलता-जुलता है।

सेन्ट-सेलमेडोर के बाद कोलम्बस ने क्यू और सेन्ट-डोमिनगो नामक स्थानों की यात्रा की। उक्त दोनों ही स्थान लाखों-लाख लोगों से भरे थे। वहाँ के लोग बड़े सुख से अपनी

जिन्दगी बसर करते थे। उन लोगों में किसी तरह की कमी कोलम्बस ने नहीं देखी थी। इसलिये कि वहाँ की जलवायु बहुत सुन्दर थी। जमीन भी बड़ी उपजाऊ थी। खेती-बारी करके तथा मवेशी पालकर वे अपना जीवन-निर्वाह करते थे। कोलम्बस जब वहाँ पहुँचे थे, तो उन लोगों ने उनका उचित स्वागत-सत्कार किया था। असभ्य लोगों का अतिथि-सत्कार सदा से प्रसिद्ध है। कोलम्बस को उन लोगों ने शक्तिभर सहायता दी थी। मगर, उन अभागों को यह मालूम नहीं था कि कोलम्बस के जिस काम में हम मदद दे रहे हैं, वह हमारी जाति को ले डूबेगा तथा हमारी जातीय सभ्यता उससे एकबारगी दुनिया से मिट जायगी। यह अवश्य है कि कोलम्बस ने उन लोगों पर बहुत अधिक अत्याचार नहीं किया था। परन्तु, मैक्सिको के इतिहास से तुम देख सकते हो कि स्पेनवालों ने वहाँ कैसी विकट पशुता का परिचय दिया था।

कोलम्बस ने वेस्ट-इंडिज का आविष्कार किया और कुछ ही दिनों के बाद उन द्वीपों को, जो कुछ बड़े तथा सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों से सजे-सँवारे थे, स्पेन के लोगों ने अपने कब्जे में कर लिया। वहाँ के बेचारे लोग अपने जन्मगत अधिकारों से हाथ धो बैठे। वहाँ रहनेवाले रेड-इंडियनों का स्वाभाव अत्यन्त ही सरल और कोमल था। स्पेनवालों को वहाँ दखल जमाते हुए उन लोगों ने कोई विशेष बाधा न दी। इसी कारण मुट्ठी भर स्पेनिशों को उतने अधिक लोगों पर धाक जमाने में सहज ही सफलता

मिली थी। मगर, वे लोग वेस्टइंडिजों को आदमी ही नहीं गिनते, चाहे वे जितना भी भला व्यवहार क्यों नहीं करते। स्पेनवाले समय-समय पर उन्हें दंड देने से भी नहीं हिचकते थे। सभ्यता के बहाने स्पेनवालों ने उन्हें वैसी ही बेरहमी से कत्ल किया था, जैसे लोग पशुओं को किया करते हैं। हजारों-हजार लोगों को अपनी गोलियों का निशाना बनाने मे उन्हें रत्ती भर भी आपत्ति नहीं हुई थी। कभी-कभी तो वे उनके पीछे शिकारी कुत्ते भी डाल देते थे।

एक दिन जिन लोगों की हँसी से वेस्टइंडिज द्वीप-समूह गूँज उठा करता था, धीरे-धीरे दुनिया से उनका नामो-निशान मिट जाने लगा। आदमी इसी प्रकार आदमियों की हत्या किया करता है। वेस्टइंडिजों मे से जिन लोगों के प्राण बचे, उन लोगों की भी स्वाधीनता साबित न बची। उनसे खरीदे हुए गुलामों-जैसा व्यवहार किया जाने लगा। खानों से धातु आदि निकालने को वे नियत किये गये। उनके पुरखों ने अपने जीवन मे इतनी मिहनत कभी भी न की थी। पैसे के लिये उन्होंने जीवन के आनन्द से हाथ नहीं धोया था; मगर अब अपने नये मालिक को सन्तुष्ट करने के लिये उन्हें रात-दिन मिहनत करनी पड़ती। लेकिन, उतना परिश्रम उनसे बर्दास्त क्यों होने लगा। धीरे-धीरे वे मौत के मुँह मे जाने लगे। लेकिन, यदि पक्षपात से दूर होकर देखा जाय, तो प्रकाश और वायु-विहीन खानों मे काम करने के नि॰ानन्द जीवन से मर जाना कहीं उत्तम है।

इस तह वेस्ट-इंडिजों की तादाद दिनोंदिन घटने लगी। उन लोगों के मतामत की यूरोपियनों ने तनिक भी पर्वाह न की और आपस में उन्होंने उस द्वीप को बाँट लिया। क्यूव, पोर्टोरिको तथा अन्य कुछ द्वीपों पर स्पेनवालों ने दखल जमाया। फ्रांसीसियों ने सेन्ट डोमिनिगो, मार्टिनीक्यू आदि लिये। साथ ही डच आदि अन्य लोगों ने भी कुछ छोटे-छोटे द्वीपों पर कब्जा किया।

अमेरिका का आविष्कार होते ही यूरोप के लोग सबसे पहले वहाँ सोना खोजने में लग गये। लोग 'सात समुन्दर तेरह नदी' को दुस्साहसपूर्वक पार करके आते और चाहते थे कि धरती की छाती चीरकर सभी धन लूट लें। उनकी धारणा थी कि अमेरिका के पहाड़-पर्वतों में सोना और चाँदी ही भरा है। पहले-पहल वेस्ट-इंडिज में भी उन्होंने बहुत खोजा-ढूँढ़ा; मगर किसी तरह का रत्न न मिला। उसके बाद उन्होंने वहाँ खेती करना आरम्भ कर दिया और अनाज क्या फला, मानो सोना ही उपजा। तब से वे वहाँ खेती करने में ही सारी शक्ति लगाये हुए हैं।

ईख और नारंगी आदि फलों के लिये वेस्ट-इण्डिज की भूमि बड़ी ही उपजाऊ है। लेकिन, मुश्किल तो यह कि यूरोप-वालों ने वहाँ स्वयं खेती न की। इधर वेस्ट-इंडिजों की संख्या तो घटती ही जा रही थी। इसलिये, अफ्रीका से नीग्रो लोग वहाँ लाये जाने लगे। दूसरे की कमाई पर अमेरिका के औप-

निवेशिक लोग गुलछर्रे उड़ाने लगे। दासों की प्रथा दिनों-दिन मजबूत ही होती चली। पिछली सदी मे क्रीतदास-प्रथा एकबारगी उठा दी गयी है। आज भी वहाँ नीग्रो लोग ही खेती-बारी किया करते हैं : परन्तु अब वे स्वाधीन हैं।

वेस्टइंडिज के कुछ टापुओं मे आपसी टंटे बराबर ही लगे रहते थे। कभी अङ्गरेज, कभी फ्रांसीसी तो कभी स्पेनवाले उन टापुओं के मालिक बन बैठते थे। इस प्रकार के रद्दो-बदल का वर्णन वैसा रोचक नहीं है। तिसपर मुसीबत यह थी कि बीच-बीच में भूकंप और सामुद्रिक अंधड़ों से भी वे द्वीप तबाह हो जाते थे।

वेस्ट-इण्डिज मे एक द्वीप है, जिसका नाम है हाइटी। कोलम्बस जब पहली बार आये थे, तभी उन्होंने हाइटी द्वीप का अविष्कार किया था। फिर तो दल के दल आकर स्पेन के लोग वहाँ बस गये। फ्रांसीसियों ने भी उसके कुछ हिस्सों पर अधिकार किया था।

उस द्वीप मे दासों की संख्या दिनोंदिन बढ़ चली थी। जब दासों ने भली-भाँति देख लिया कि गोरों से हमारा दल शक्तिशाली है, तो उन लोगों ने बगावत कर दी। और, ठीक उन्ही दिनों फ्रांस मे भी बलवा मचा हुआ था। नतीजा यह निकला कि विद्रोहियों को दबाने की कोई चेष्टा फ्रांसीसी लोग नही कर सके। नीग्रो लोगों ने यूरोपियनों के अनेक अत्याचार सहे थे, मौका पाकर उनका रत्ती-रत्ती बदला चुकाने लगे।

हज़ारों गोरों को उन्होंने मौत के घाट उतारा, उनके सर्वस्व लूट लिये और घरों में आग लगा दी। उन सबों के भयानक उत्पात से कुछ ही आदमी अपनी जान बचा पाये थे।

उसके बाद नीग्रो लोगों ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी। राष्ट्र-शासन की उन्होंने एक नयी ही रीति निकाली। न मालूम हाइटी में कितने विद्रोह हुए। अमेरिका के उन प्रदेशों के लोग, जहाँ गोरों का शासन था, नीग्रो लोगों के दुस्साहस पर बहुत खफा हुए। उन्हें इसकी सज़ा देने के लिये वे जी-जान से कोशिशें करने लगे। मगर, अटल होकर नीग्रो लोग अपनी आज़ादी को बचाते रहे। उनके यहाँ किसी यूरोपियन को नौकरी नहीं मिलती थी। जो भी नौकर थे, सब नीग्रो या मुलाट्टो थे। हाइटो ही इस बात का प्रमाण है कि विरुद्ध शक्तियों के सामने काले आदमी स्वतंत्र की नाईं अपने राष्ट्र को चला सकता है। वहाँ आज का गण-तंत्र शासन चल रहा है। ऐतिहासिकों का कहना है कि वहाँ राष्ट्रीय कामों में किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं है। वे बहुत शान्तिपूर्वक सभी काम किया करते हैं।

दिन-ब-दिन वहाँ की सामाजिक तरक्की भी हो रही है। उन लोगों में बहुत-से लोग चतुर और उद्यमी हैं। खेती-बारी और वाणिज्य-व्यवसाय से वे धनी भी बन गये हैं।

सत्रहवीं सदी में फ्रांस और इंगलैंड के सामुद्रिक लुटेरे आकर उन द्वीपों में बहुत ही उत्पात मचाया करते थे। सन

१६७० में डोमिनगो द्वीप के पच्छिमी हिस्से मे वे बस गये। उन लोगों को बुकानियर कहते हैं। पहले तो जंगली जानवरों का शिकार करके वे अपना पेट पाला करते थे, मगर जब उन लोगों की संख्या बढ़ गयी, तो लोगों ने कुछ जहाज बनाये और उन्हीं पर चढ़कर वे समुद्रमे लूट-पाट मचाते। जहाँ कोई जहाज या नाव उनकी नजर मे आती कि वे बलपूर्वक उससे धन-रत्न लूट लेते। इस लूट-पाट से उन लोगों ने इतना अधिक धन कमाना शुरू किया कि यूरोप से भी बहुत-बहुत बहादुर लोग आ-आकर उनका साथ देने लगे। उनके चलते बेचारे व्यापारियों को तो व्यापार करना मुहाल हो गया था। धीरे-धीरे उन लुटेरों की शक्ति इतनी बढ़ गयी कि समय-समय पर वे किसी बड़े नगर मे घुस पड़ते थे और वहाँ लूट-पाट मचाया करते थे। अन्त मे वे भी लोगों से कर वसूलने लगे, जैसा कि हमारे यहाँ लुटेरे (बर्गी) लोग डरा-धमकाकर लोगों से कर लिया करते थे। मगर, यूरोपीय शक्तियों के लिये सब दिन उनके जुल्मों को सह लेना असम्भव हो उठा। वे लोग आपस मे मिलकर कड़ी तौर से इन लोगों को दबाने लगे। फल यह निकला कि वेस्ट-इंडिज से लुटेरों का उपद्रव जाता रहा। अब वहाँ उसकी वैसी गुंजाइश नहीं।

वेस्ट-इंडिज द्वीप-समूह मे सामुद्रिक मुर्गे बहुत अधिक पाये जाते हैं। गर्मी के दिनों मे उड़कर वे संयुक्त-राज्य चले जाते हैं और जाड़े का दिन आते ही उन एकांत द्वीपों मे आ

जाते हैं। उन द्वीपों में सब दिन वसन्त ही रहता है। वहाँ न तो कुहरा होता है, न बर्फ पड़ती है। पेड़-पौधे सब दिन हरे पत्तों से सुशोभित रहते हैं। फल तो अनेक प्रकार के पाये जाते हैं। जंगलों में बहुत मूल्यवान लकड़ियाँ मिलती हैं। वहाँ के सुग्गे बहुत छोटे-छोटे होते हैं। उन्हें पिंजड़े में रहना नहीं भाता। वे किसी छड़ी पर बैठकर सिर झुलाये चित्र की नाईं चुपचाप बैठे रहते हैं।

जंगली जानवरों में कई तरह के बन्दर और भेड़िये पाये जाते हैं। एक पतिंगा वहाँ ऐसा पाया जाता है, जो घड़ी-घड़ी अपना रंग बदलता रहता है। उसे बहुरूपिया कहते हैं। लोगों की धारणा थी कि वे पतिंगे हवा पर ही जीवित रहते हैं; परन्तु अब जाँच करने पर पता चला है कि वे गुप्त-रूप में खूब ही छोटे-छोटे कीड़ों को खाया करते हैं।

वेस्ट-इंडिज में रहने के लिये सभी तरह की सुविधायें हैं सही, परन्तु एक आफत बहुत बड़ी है कि समय-समय पर वहाँ भयंकर तूफान आया करता है। उस तूफान से जहाजों के पाल उड़ जाते हैं, मस्तूल चकनाचूर हो जाता है, घर-द्वार तहस-नहस हो जाते हैं। धीरे-धीरे वेस्ट-इंडिज द्वीप-समूह तरक्की कर रहा है।

दक्षिण अमेरिका

जब कोलम्बस ने अमेरिका का आविष्कार किया, तो रोम के पोप ने उसे अपना कहकर दावा पेश किया। चूँकि ईसाई-धर्म-जगत के वे नेता थे, इसलिये नये-नये आविष्कारों पर उनका अधिकार था। मगर, उन्होंने उसे अपने लिये न रक्खा और स्पेन तथा पुर्तगाल, इन दो देशों को बाँट दिया। अज्ञात समुद्र पर यात्रा करने में उन दिनों इन्हीं दो देशों के लोग बहादुर थे। कारण ही नये महादेश के सुख भोगने के योग्य वे ही लोग थे। परन्तु, कुछ दिनों के बाद फ्रांस के राजा ने कहा—तो क्या इसका कोई पक्का सबूत है कि स्पेन और पुर्तगाल ही के राजा को ईश्वर ने सारी पृथ्वी दान कर दी है? बस, वे भी अमेरिका में अपना अधिकार बढ़ाने की चेष्टा करने लगे।

वेस्ट-इंडिज के द्वीपों पर सबसे पहले स्पेनवालों ने अधिकार किया था। क्यूबा नामक द्वीप में उन्होंने एक नगर बसाया और वहाँ शासनकर्ता का निवास कायम किया। उसके बाद भिन्न-भिन्न देश के लोगों की नजर उसपर गड़ी।

मगर, इसका कारण क्या था? उस समय यूरोप के सभी लोगों का विश्वास था कि अमेरिका मे एक डोरेडो नाम का राज्य है। वहाँ बेशुमार सोना-चाँदी मिलता है। कहा नहीं

जा सकता कि यह अफवाह कहाँ से उड़ी थी। जो भी हो, इस कहानी ने यूरोपवालों की कल्पना को सजग कर दिया था। कितने लोग जो एल-डोरेडो की खोज में गये थे, गिना नहीं जा सकता। एल-डोरेडो के विषय में वे सोचते थे कि वहाँ के राजा रोज़ ऐसे ढंग से सोने पहनते हैं कि वे एक सोने ही की मूर्ति-से दीखते हैं। और वे सोने-से उज्ज्वल राजा मार्वल पत्थर के एक अत्यन्त सुन्दर सुफेद घर में रहते हैं। उस इमारत के स्तंभों में मणि-मुक्ता जड़े हैं। अन्दर जाने के फाटक की दोनों तरफ दो सिंह हैं, जो सोने की जंजीरों से बँधे हैं। उन सिंहों को पार कर जाने पर सामने ही एक फुहारा दिखायी पड़ता है, जिससे हरदम चाँदी के छींटे निकलते हैं। शाहीमहल का भीतरी भाग बहुत सुन्दर है।

प्रासाद के भीतर एक मंदिर है और वह मंदिर सोने का ही बना हुआ है। मंदिर के अन्दर सूर्यदेव की सोने की एक बड़ी-सी मूर्ति है। मूर्ति के पास आठों पहर चिराग जलता रहता है, जिसकी रोशनी में मंदिर को सोने-चाँदी की असंख्यों चीजें झलमलाती रहती हैं। ऐसे सुन्दर वर्णन से लोगों के मुँह में पानी आ गया। यूरोप के अनेक दुस्साहसी लोग अमेरिका जा धमके। स्पेन के लोग तो एक अन्य वस्तु की भी तलाश में गये थे, जिसे जवानी का सोता कहते हैं। उनकी धारणा थी कि वहाँ घने जंगलों की ओट में एक स्रोत है, उसके पानी से शरीर पर पड़ी हुई झुर्रियाँ दूर हो जाती हैं, सुफेद बाल एकदम काले हो जाते हैं।

इस तरह की कल्पना से अन्य कोई लाभ चाहे हुआ हो या नहीं, लोगों को खोज करने का उत्साह तो जरूर मिला था। दक्षिणी अमेरिका का आविष्कार तो ऐसी ही कल्पनाओं के कारण हुआ था। दक्षिणी अमेरिका की लम्बाई ४७०० मील और चौड़ाई ३२०० मील है।

वहाँ-जैसी घनी पर्वतमाला संसार मे और कहीं भी नही है। आजकल वहाँ के देशों के सभी नाम स्पेन और पुर्तगाल की भाषा मे है ; इस कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि ये देश कभी उन्हीं दो जातियों के थे।

मध्य और दक्षिण अमेरिका के प्रायः सभी देशों की सभ्यता एक-सी है और उनके इतिहास में भी समानता है। इसलिये, सभी देशों का अलग-अलग विवरण न देकर दो प्रधान देश, ब्राजिल और पेरू के विषय में ही हम बतावेंगे।

ब्राजिल बहुत बड़ा देश है यहाँ तक कि संयुक्त राज्य से भी बड़ा है। जिस समय स्पेन के लोग अमेरिका के और-और स्थानों पर दखल जमा रहे थे, पोर्चुगीज लोग उसी समय ब्राजिल पहुँचे थे। आमेजन नदी के किनारे उन लोगों ने अजीब तरह की स्त्रियाँ देखी थी, जो लड़ती थीं, हथियारों से लैस थीं और जिनके स्तन कटे हुए थे। उन लोगों को पोर्चुगीज़ों ने लड़ाई मे हरा दिया था। उसके बाद सन् १५०० तक मे तो पोर्चुगीज लोगों ने ब्राजिल पर नाम को अपना अधिकार कर लिया। उसके पचास साल बाद उन लोगो ने

ब्राहिया में अपना उपनिवेश कायम किया। परन्तु, ब्राजिल में पोर्चुगीज लोग बहुत दिनों तक निष्कंटक रूप से व्यवसाय न चला सके। धीरे-धीरे अङ्गरेज, फ्रांसीसी और डच लोग भी वहाँ आने लगे। डच लोग अपने कठोर व्यवहार के कारण सत्रहवीं सदी के मध्य में वहाँ से निकाल बाहर किये गये थे।

उनके बाद ब्राजिल के सर्वेसर्वा पोर्चुगीज ही हुए, फिर भी हम ऐसा नहीं कह सकते हैं कि वे लोग भी दयापूर्वक वहाँ का शासन करते थे। पहले-पहल तो पुर्तगाल में जिन अपराधियों को देश निकाले की सजा मिलती थी, वे ब्राजिल भेज दिये जाते थे, जिस प्रकार अँगरेज लोग अपराधियों को ऑस्ट्रेलिया भेज दिया करते थे। ब्राजिल पुर्तगाल से बहुत ही दूर था, फिर भी जो आदमी वहाँ निर्वासित किये जाते थे, वे समझते थे कि हम किसी और दुनिया को जा रहे हैं। सन् १५१८ में पुर्तगाल से कुछ यहूदी वहाँ निर्वासित किये गये थे एवं उन्हीं लोगों ने पहले-पहल ब्राजिल की तरक्की के लिये चेष्टा की थी। खेती-बारी पर विशेष ध्यान देकर ब्राजिल में उन्होंने ईख उपजाना आरम्भ किया। ईख की खेती से उन लोगों ने काफी रुपये पैदा किये। पुर्तगाल के राजा को जब मालूम हुआ कि ब्राजिल की भूमि उपजाऊ और खेती के काम की है, तो वहाँ की सम्पत्ति का हिस्सा लेने की गरज से उन्होंने एक शासक नियुक्त किया।

पुर्तगाल को उदाहरण मानकर और-और देश के लोगों ने भी वैसा ही करने की चेष्टा की। परन्तु, पोर्चुगीजों से बाधा पाकर वे बाज आये। उस समय यदि उन्हें मालूम रहा होता कि ब्राजिल मे ऐसा रत्न छिपा हुआ है, तो सहज ही ब्राजिल पर दावा करना छोड़ नहीं देते।

इसके बहुत दिनो बाद ब्राजिल मे अत्यन्त ही मूल्यवान सोने की खान का पता चला। नदी मे, बालू में और पत्थर के टुकड़ों मे भी सोने के कण पाये जाने लगे। साथ ही सोने की खान मे समय-समय पर अत्यन्त ही उज्ज्वल हीरा, मणि और मुक्ता झलमला उठते। तुम्हें बताना नहीं पड़ेगा कि यह खबर पाते ही दल के दल लोग वहाँ जा बसे थे।

रियो पारडो एक नदी है। है तो बहुत ही छोटी नदी, परन्तु उसमें हीरा पाया जाता है। उसके अलावे भी अन्य नदियाँ हैं, जहाँ हीरा पाया जाता है। हीरा ढूँढ़ निकालने के लिये नीग्रो गुलाम मँगाये गये थे। अगर कोई गुलाम एक बड़ा-सा हीरा पाता था, तो बतौर पुरस्कार के, वह छोड़ दिया जाता था।

अपने देश में बलवा और अनिश्चितता को देख पुर्तगाल के सम्राट् सन् १८०६ मे ब्राजिल चले आये थे। ब्राजिल के रियो जनैरो नगर मे उन्होंने अपनी नयी राजधानी कायम की। फिर जब नेपोलियन का पतन हुआ, यूरोप के राजनैतिकगण पहले से कुछ ठंढे पड़े, तो वे फिर से पुर्तगाल लौट गये।

सन् १८३१ में सम्राट् पेड़ो के शासन से ब्राजिल की प्रजा एकबारगी ऊब उठी। प्रजा की विरक्ति देखकर सम्राट् सिंहासन से अलग हो गये और अपनी जगह पर अपने पुत्र को सम्राट् बनाया। मगर, राजकुमार की उम्र उस समय केवल पाँच की थी। इसलिये, जबतक कि वे बालिग न हो जायँ, तब तक एक सभा द्वारा राज-काज चलाया जाने लगा। राजकुमार द्वितीय पेड़ो के नाम से राजा हुए। वे विद्वान थे, आधुनिक विज्ञान आदि विषयों में उनका अच्छा दखल था। उनके लगातार कोशिश करते रहने के कारण सन् १८८८ में ब्राजिल से दास-प्रथा उठ गयी और लगे हाथों ईसाई धर्मसंघों को भी मुक्त कर दिया गया। द्वितीय पेड़ो की उत्तराधिकारिणी राजकुमारी ईसाबेला ने फ्रांस के काउन्ट डी यू से शादी की। काउन्ट डी यू लुई फिलिप के पोते थे। लेकिन, काउन्ट ब्राजिल के लोगों के अप्रिय हो उठे। सन् १८८९ में ब्राजिल की सेना बागी हो गयी। सम्राट् पेड़ो तो बूढ़े हो चुके थे, इसलिये विद्रोहियों को दबाने के लिये वे विशेष कुछ नहीं कर सके। उन्होंने पाँच लाख पाउंड नकद और पेंशन लेकर एक ही दिन में गद्दी छोड़ दी। गद्दी छोड़ देने के बाद वे यूरोप गये और वहाँ उनकी मृत्यु हो गयी। ब्राजिल में गणतंत्र की स्थापना हुई, जिसका नाम युक्त-राष्ट्र रक्खा गया। ब्राजिल के युक्त-राष्ट्र की शासन-प्रणाली अमेरिका के युक्त-राष्ट्र ही-सी है।

परन्तु ब्राजिल का शासन ठीक तौर से चलता नहीं है।

थोड़ा-बहुत, रुपया लेकर ही वहाँ श्रेष्ठ पद दे दिया जाता है। राष्ट्र के कार्यकर्तागण सज्जनता का व्यवहार नहीं करते। इसलिये, यद्यपि वहाँ स्वाधीनता का नाम है, परन्तु कार्यतः स्वाधीनता नहीं है। वहाँ के आदमी भी आलसी होते हैं। जैसे-तैसे भोजन का बन्दोबस्त कर लेने से ही वे सन्तोष कर लेते है। अब तक भी उनमें सभ्यता के पथ पर बढ़ने की कोई विशेष चेष्टा नही देखी जाती। जमीन बड़ी उपजाऊ है, थोड़ी-सी मिहनत करने ही से खाद्य-सामग्री का ठिकाना लग जाता है। और, यही कारण है कि लोगों मे उन्नति की कोई चेष्टा नहीं।

दक्षिणी अमेरिका मे ब्राजिल के बाद ही अत्यन्त प्राचीन तथा सभ्य राष्ट्र पेरू का नाम उल्लेखनीय है। पेरू ब्राजिल से पूरब तथा बोलिविया के दक्षिण में है। वहाँ के प्राचीन राजाओं की उपाधि इंका थी। लोगों की धारणा थी कि प्रथम इंका सूर्य के पुत्र थे। हमारे यहाँ भी अयोध्या के राजाओं को लोग सूर्यवंश का मानते थे। पेरू के लोग सूरज ही की उपासना करते थे। वहाँ की सभ्यता भी बिलकुल गयी-बीती न थी। जब स्पेन के लोग वहाँ नहीं पहुँचे थे, तो पेरू मे अनेक नगर थे एवं वहाँ का ऐश्वर्य मैक्सिको से भी कहीं अधिक था। सोने की तो बात ही क्या।

स्पेन से फ्रांसिस पिजारो इसी लोभ से पेरू आये थे। सन् १५३१ मे वे पेरू पहुँचे। पहुँचते ही उन्होंने वहाँ के राजा इंका आटबोलिया को उनके महल ही मे कैद कर लिया। अपने

छुटकारा के लिये पिजारो को राजा ने इतना अधिक सोना देना चाहा कि उससे एक बहुत बड़ा हॉल भर जाय। पिजारो ने उस अतुल धन को तो हथिया लिया; परन्तु इंका को उन्होंने छुट्टी नहीं दी। उन्हें उन्होंने घायल करके आग में जला दिया। पेरू में पिजारो ने बर्बरता का जो नंगा नाच दिखाया, संसार के किसी भी आक्रमणकारी ने वैसा नहीं किया। पेरू पर अधिकार जमा चुकने पर पिजारो ने अपने सेनापति आल-मैगारो से टंटा खड़ा किया। नतीजा यह निकला कि आल-मैगारो को प्राणों से हाथ धोना पड़ा। परन्तु, उसके बाद पिजारो भी अधिक दिनों तक सुख से जीवन नहीं बिता सके, उन्हें भी मार डाला गया था।

कुछ समय के बाद पेरू कई प्रदेशों में बाँट दिया गया। इतना जरूर था कि सभी प्रदेश स्पेन ही के अधीन थे। परन्तु, जब स्पेन की शक्ति घटने लगी, तो उन प्रदेशों ने स्वाधीनता के लिये आन्दोलन करना शुरू किया। उनके आन्दोलन में स्पेन भी रुकावट न डाल सका। जब जोसेफ बोनापार्ट, नेपोलियन के भाई, स्पेन की गद्दी पर बैठे, तो पेरू में बगावत का पहला चिह्न दिखायी पड़ा। यूरोप की और-और शक्तियों की कोशिशों से जब स्पेन के भूतपूर्व राजा को फिर गद्दी मिली, तो पेरू उनके अधिकार को कबूल कर लेने पर तैयार नहीं हुआ। इंगलैंडवालों ने भी पेरू के लोगों की स्वाधीनता का समर्थन किया। घोषणा कर दी गयी। दक्षिण अमेरिका के

स्पेनिश राज्य स्वाधीन हो गये। इससे स्पेन की शक्ति तो एकबारगी तुच्छ हो गयी। जो देश स्पेन के अधिकार में थे, उनके कुछ गणतन्त्र कायम किये गये। उनके नाम हैं—मैक्सिको का युक्तराष्ट्र, मध्य अमेरिका का गणतंत्र, नॉवॉग्रानाडा, वेनिज़ुएला, इक्वेटर, पेरू, बोलिविया, चिली, विउनोस आयेरेस, उरूगुये और पैरागुये।

एक गायना को छोड़कर आजकल दक्षिणी अमेरिका के सभी देशों मे साधारणतंत्र कायम है। मगर, ऐसी घृणित शासन-प्रथा और किसी भी साधारणतंत्र मे नहीं है। जब देखो, लड़ाई-दंगे मच ही रहे हैं, आपसी ईर्ष्या-द्वेष और झगड़े से तो फ़ुर्सत ही नहीं। कितने देश तो ऐसे है, जहाँ डिक्टेटर या राजशक्ति-सम्पन्न किसी आदमी का शासन कायम करना पड़ा था। परन्तु, खून की रफ्तार रोक लेने के लिये किसी एक प्रधान व्यक्ति का शासन कभी-कभी सिर आँखों पर लेना पड़ता है। एक सौ वर्ष भी नही बीते होंगे, वेनिज़ुएला मे सौ से अधिक बलवे हुए। मैक्सिको मे छ महीने या एक वर्ष पर शासक को बदलना पड़ता है, कोलम्बिया ने अपना नाम और शासन-व्यवस्था छ बार बदली। इससे सहज ही समझा जाता है कि वहाँ की राष्ट्र-व्यवस्था कैसी संकटपूर्ण है। अमेरिका के संयुक्त-राज्य मे जैसी सभ्यता और सुव्यवस्था है, अमेरिका में ठीक उसकी उलटी बात है।
